


G.D. SAH

सामयिक साहित्य-माला का—६ वाँ पुष्प | संपादक—श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पिंजरा

(कहानी-संग्रह)

लेखक—

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प्रकाशक—

सामयिक साहित्य-सदन,

चेम्बरलेन रोड, लाहौर ।

प्रकाशक—

श्री० उमाशंकर त्रिवेदी एम० ए०,
व्यवस्थापक—सामयिक साहित्य-सदन,
चेम्बरलेन रोड, लाहौर ।

प्रथम संस्करण—जून १९४४
मूल्य २)

मुद्रक
लाला खुशहाल चन्द 'आनन्द'
वीर मिलाप प्रेस,
गनपत रोड, लाहौर ।

भाई श्री वाचस्पति पाठक को

सन्तोष का स्वर

'अश्क' ने 'प्रेमी' की आँखों में अवतरित होने के पहले उसके हृदय में घर कर लिया था। लगभग बारह वर्ष पहले की बात है, जब मैं लाहौर से प्रकाशित 'भारती' का संपादन करता था—तब एक दिन एक अपरिचित नवयुवक मेरे कार्यालय में आया। अपरिचित वह अवश्य था, लेकिन ज़बर्दस्ती मेरे प्राणों में घुस जाना चाहता था।

उस समय वह उर्दू के साहित्य-संसार में अपना स्थान बनाने के लिये भटक रहा था और हिन्दी की सेवा करने के लिये भी उतावला था। जितना उसकी वाणी में वेग था उतनी ही उसके हृदय में लगन थी। उसने 'प्रेमी' से सहारा चाहा इस नए आकाश में उड़ने के लिए। 'प्रेमी' ने उसके पंखों के उत्साह को आँका और उसे आकाश की गहराइयों में फेंक दिया। वही 'अश्क' आज हिन्दी के 'साहित्याकाश' में ऊँचाई की चरम सीमा पर है। इससे 'प्रेमी' के हृदय को बहुत संतोष है।

हिन्दी के पाठकों को 'अश्क' का परिचय नए सिरे से देने की आवश्यकता नहीं है। उस की लेखनी ने ऐसी रेखाएँ अंकित की हैं, जिन्हें युग के 'आँधी-तूफ़ान' उज्वल ही करेंगे—धुँधले नहीं बनाएँगे।

ऐसे लोग भी हैं जो 'अश्क' की रचनाओं की उत्कृष्टता के क़ायल नहीं। उनके विषय में मेरी सम्मति है वे उन्हें समझने का यत्न नहीं करते। 'अश्क' की कहानियाँ अलौकिकता

का कल्पित वातावरण लेकर नहीं आतीं—केवल रोमांस की रंगीन दुनिया नहीं चित्रित करतीं—घटनाओं का अटम्बर नहीं लगातीं—वे तो हमारे आस-पास की दुनिया के छिपे हुए रहस्यों को ही प्रकट करती हैं। मानव-स्वभाव की मक्कारी, दुरंगेपन और दुर्बलताओं का ऐसा सच्चा, सजीव और प्रभावशाली चित्रण भारतीय साहित्यकारों में से किस की रचनाओं में आप पाते हैं। केवल खामियाँ ही नहीं मानव की सद्वृत्तियों का भी ईमानदार चित्रण लेखक ने किया है। वह उन कलाकारों में से है जिन पर ज़माने को गर्व होना चाहिये। उस की दृष्टि पैनी और चित्रण-शक्ति प्रबल है। ये कहानियाँ जीवन के अनुभव हैं। विशेषता यह है कि लेखक ने इन्हें इस प्रकार लिखा है जैसे वह एक तटस्थ प्रेक्षक है।

लेखक में अनेक खूबियाँ हैं—उनका ज़िकर करने का मुझे लोभ भी है, लेकिन मैं पाठकों को इस विषय में अपनी सम्मति बताने के लिए स्वतन्त्रता देना अधिक उचित समझता हूँ। 'अश्क' की प्रथम हिन्दी रचना 'भारती' में छापने का अवसर मुझे मिला था और उसका प्रथम हिन्दी कहानी-संग्रह भी 'सामयिक साहित्य-सदन' द्वारा मैं प्रकाशित करा रहा हूँ। यह मेरे लिये बड़े आत्म-सन्तोष की बात है। मुझे यह कहते संकोच नहीं होता कि 'अश्क' मुझे अपनी आत्मा के समान प्रिय है और उसका चरमोत्कर्ष मेरी कामना है।

—'प्रेमी'

सूची

शान्ति ने ऊब कर कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उठ कर अनमनी सी कमरे में घूमने लगी । उस का मन स्वस्थ नहीं था, लिखते-लिखते उस का ध्यान बँट जाता था । केवल चार पंक्तियाँ वह लिखना चाहती थी, पर वह जो कुछ लिखना चाहती उस से लिखा न जाता था। भावावेश में कुछ का कुछ लिख जाती थी।

घूमते-घूमते, वह चुपचाप खिड़की में जा खड़ी हुई। सन्ध्या का सूर्य दूर पश्चिम में डूब रहा था। माली ने क्यारियों में पानी छोड़ दिया था और दिन-भर के मुरझाये फूल जैसे जीवन-दान पाकर खिल उठे थे। हल्की-हल्की ठंडी हवा चलने लगी। शान्ति ने दूर सूर्य की ओर निगाह दौड़ाई—पीली-पीली सुनहरी किरणें, जैसे डूबने से पहले, उन छोटे-छोटे बच्चों के खेल में जी भर हिस्सा ले लेना चाहती थीं जो सामने के मैदानकी हरी-भरी घास पर ऊंच नीच से बेपरवा, उन्मुक्त खेल रहे थे।

सड़क पर दो कमीन युवतियाँ; हँसती; चुहलें करती, उछलती, कूदती चली जा रहीं थीं। शान्ति ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और फिर मुड़ कर उस ने अपने इर्द-गिर्द एक थकी हुई निगाह दौड़ाई—छत पर बड़ा पङ्खा धीमी आवाज़ से अनवरत चल रहा था। दरवाज़ों पर भारी पर्दे हिल रहे थे और भारी कौच और उन पर रखे हुए रेशमी गद्दे, गलीचे और दरम्यान में रखे हुए छोटे-छोटे अठकोने मेज़ और उन पर पीतल के नन्हें-नन्हें हाथी और फूलदान—और उस ने अपने-आप को उस पक्षी-सा महसूस किया, जो विशाल, स्वच्छन्द आकाश के नीचे, खुली स्वतन्त्र हवा में आम की डाली से बँधे हुए पिञ्जरे में लटक रहा हो।

तभी नौकर उस के छोटे लड़के को जैसे बरबस खींचता-सा लाया। धोबी की लड़की के साथ वह खेल रहा था। आव देखा न ताव और शान्ति ने लड़के को पीट दिया—क्यों तू उन कमीनों के साथ खेलता है, क्यों खेलता है तू! इतने बड़े बाप का बेटा हो कर! और उस की आवाज़ चीख़ की हद को पहुँच गई। हैरान से खड़े नौकर ने बढ़ कर ज़बर्दस्ती से बच्चे को छुड़ा लिया। शान्ति जाकर धम से कौच में धँस गई और उस की आँखों से अनायास ही आँसू बह निकले!

× × ×

तब वहीं बैठे-बैठे उस की आँखों के सामने अतीत के कई चित्र फिर गये!

× × ×

उस के पति तब लांडरी का काम करते थे। बाइबल सोसाइटी के सामने जहाँ आज एक दन्दानसाज़ बड़े धड़ल्ले से

लोगों के दांत उखाड़ने में निमग्न रहते हैं, उन की लांडरी थी। आय अच्छी थी, पर ख़र्च भी कम न था। ३५ रुपया तो दूकान का किराया ही देना पड़ता था और फिर कपड़े धोने और स्त्री करने के लिए जो तबेला ले रखा था; उसका किराया अलग था। इस के अतिरिक्त धोबियों को वेतन; कोयले; मसाला और सौ दूसरे पचड़े! इस सब ख़र्च की व्यवस्था के बाद जो थोड़ा बहुत बचता था, उस से बड़ी कठिनाई के साथ घर का ख़र्च चलता था और घर उन्हों ने दुकान के पीछे ही महीलाल स्ट्रीट में ले रखा था।

महीलाल स्ट्रीट जैसी अब है वैसी ही तब भी थी। मकानों का रूप, यद्यपि इन दस वर्षों में कुछ बदल गया है, किन्तु मकानों में कुछ अधिक अन्तर नहीं आया। अब भी इस इलाके में कमीन बसते हैं और तब भी वहीं बसते थे। सील-भरी अँधेरी कोठड़ियाँ चमारों, धीवरों और शुद्ध हिन्दुओं का निवास-स्थान थीं। एक ही कोठड़ी में रसोई, बैठक, शयन-गृह और वह भी ऐसा, जिस में सास-श्वसुर, बेटा-बहू, लड़कियाँ-लड़के, सब एक साथ सोते हों।

जिस मकान में शान्ति रहती थी, उस के नीचे टेंडी चमार अपने आठ लड़के-लड़कियों के साथ रहता था, दूसरी चौड़ी गली में मारवाड़ी की दूकान थी और जिधर दरवाज़ा था उधर भङ्गी रहते थे। उन के दरवाज़े से ज़रा ही परे भांड्यों ने तँदूर लगा रखा था, जिस का धुआँ सुबह-शाम उन की रसोई में आ जाया करता था, जिस से शान्ति को प्रायः रसोई की खिड़की बन्द रखनी पड़ती थी। दिन-रात वहाँ चारपाइयाँ बिछी रहती थीं और कपड़ा बचा कर निकलना प्रायः असम्भव

होता था।

गर्मियों के दिन थे और म्यूनिसिपैलिटी का नल काफी दूर अनारकली के पास था, इसलिये इन ग़रीब लोगों की सहूलियत के खयाल से शान्ति ने अपने पति की सिफ़ारिश पर नीचे डेवढ़ी के नलों से उन्हें पानी लेने की इजाज़त दे दी थी। किन्तु जब उन्हें उस मकान में आये कुछ दिन बीते तो शान्ति को मालूम हो गया कि यह उदार-चरिता बड़ी मँहगी पड़ेगी। एक दिन जब उसके पति नहाने के बाद साबुन की डिबिया नीचे ही भूल आये और शान्ति उसे उठाने गई तो उसने उसे नदारद पाया, फिर कुछ दिन बाद तौलिया गायब हो गया, और इसी तरह दूसरे-तीसरे कोई न कोई चीज़ गुम होने लगी। हार कर एक दिन शान्ति ने अपने पति के पीछे पड़ कर नल्के की टूँटी पर लकड़ी का छोटा-सा बक्स लगवा दिया और चाबी उसकी अपने पास रख ली।

दूसरे दिन, जब एक ही धोती से शरीर ढाँपे वह पसीने से निचुड़ती हुई, चूल्हे के आगे बैठी रोटी की व्यवस्था कर रही थी, तो उसने अपने सामने एक काली-सी-लड़की को खड़े पाया।

लड़की उसकी समवयस्क ही थी। रंग उसका बेहद काला था और शरीर पर उसने अत्यन्त मैली-कुचैली धोती और बंडी पहन रखी थी। वह अपने गहरे काले बालों में सरसों ही का तेल डालती होगी क्योंकि उसके मस्तक पर बालों के नीचे पसीने के कारण तेल में मिली हुई मैल की एक रेखा बन रही थी। चौड़ा-सा मुँह और चपटी-सी नाक! शान्ति के हृदय में क्रोध और घृणा का तूफ़ान उमड़ आया। आज तक घर की जमा-

दारन के अतिरिक्त नीचे रहने वाली किसी कमीन लड़की को ऊपर आने का साहस न हुआ था और न स्वयं ही उसने किसी से बातचीत करने की कोशिश की थी।

लड़की मुस्करा रही थी, और उसकी आँखों में विचित्र-सी चमक थी।

क्या बात है—जैसे आँखों ही आँखों में शान्ति ने क्रोध से पूछा।

तनिक मुस्कराते हुए लड़की ने प्रार्थना की कि बीबी जी पानी लेना है।

'हमारा नल्का भङ्गी-चमारों के लिए नहीं है !'

'हम भङ्गी हैं न चमार !'

'फिर कौन हो ?'

'मैं बीबी जी, सामने के मन्दिर के पुजारी की लड़की…'

लेकिन शान्ति ने आगे न सुना था। उसे लड़की से बातें करते घिन आती थी। धोती के छोर से चाबी खोल कर उस ने फेंक दी।

× × ×

इस काले-कलूटे शरीर में दिल काला न था। और शीघ्र ही शान्ति को इस बात का पता चल गया। रोज ही पानी लेने के वक्त चाबी के लिए गोमती आती। गली में पूर्बियों का जो मन्दिर था, वह उस के पुजारी की लड़की थी। अमीरों के मन्दिरों के पुजारी भी मोटरों में घूमते हैं। यह मन्दिर था ग़रीब पूर्बियों का, जिन में प्रायः सब चौकीदार, चपरासी, साईस अथवा मजदूर थे। पुजारी का कुटुम्ब भी खुली गली के एक ओर भङ्गियों की चारपाइयों के सामने सोता था। और जब

रात को कोई ताँगा उधर से गुजरता तो प्रायः किसी न किसी की चारपाई उस के साथ घिसटती हुई चली जाती। मन्दिर में कुआँ तो था, पर जब से इधर नल्के आये उस पर डोल और रस्सी की कमी ही रही और फिर जब समीप ही किसी की डेवढ़ी के नल्के से पानी मिल जाये तो कुएँ पर बाजू तोड़ने की क्या ज़रू-है, इस लिए गोमती पानी लेने और कुछ पानी लेने के बहाने बातें करने रोज़ ही सुबह-शाम आ जाती। बटलोही नल्के के नीचे रख कर, जिस में सदैव पान के कुछ पत्ते तैरा करते, वह ऊपर चली आती और फिर बातों-बातों में भूल जाती कि वह पानी लेने आई है और उस समय तक न उठती जब तक उस की बुढ़िया दादी गली में अपनी चारपाई पर बैठी हुई चीख़-चीख़ कर गालियाँ देती हुई उसे न पुकारती।

इस का यह मतलब नहीं कि इस बीच में शान्ति और गोमती में मित्रता हो गई थी। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि शान्ति जब रसोई में खाना बनाती अथवा अन्दर कमरे में बैठी कपड़े सीती, तो उस को गोमती का सीढ़ियों में बैठ कर बातें करते रहना बुरा नहीं लगता। कई तरह की बातें होतीं—मुहल्ले के भङ्गियों की बातें, चमारों के घरेलू झगड़ों की बातें और फिर कुछ गोमती की निजी बातें। इस बीच में शान्ति को मालूम हो गया कि गोमती का विवाह हुए वर्षों बीत चुके हैं, पर उस ने अपने पति की सूरत नहीं देखी। बेकार है, इस लिए न वह उसे लेने आता है और न उस के पिता उसे उस के साथ भेजते हैं।

कई बार छेड़ने की गर्ज़ से, या कई बार मात्र आनन्द लेने की गर्ज़ से ही शान्ति उस से उस के पति के सम्बन्ध में और उस के अपने मनोभावों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछती। उत्तर

देते समय गोमती शर्मा जाती थी।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उस की जगह वहीं सीढ़ियों में बनी रही थी।

× × ×

फिर किस प्रकार पुजारी की वह काली-कलूटी लड़की वहाँ से उठ कर, उस के इतने समीप आ गई कि शान्ति ने एक बार अनायास उसे आलिंगन में ले कर कह दिया—आज से तुम मेरी बहिन हुई गोमती—वह सब आज भी शान्ति को स्मरण था।

× × ×

सर्दियों की रात थी और अनारकली में सब ओर धुआं-धुआँ हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे लाहौर के समस्त तँदूरों, होटलों, घरों और कारखानों से सारे दिन उठने वाले धुएँ ने साँझ पड़े इकट्ठे हो कर अनारकली पर आक्रमण कर दिया हो। शान्ति अपने नन्हें को कंधे से लगाये, हाथों में कुछ हल्के-फुल्के लिफ़ाफ़े थामे क्रय-विक्रय कर के चली आ रही थी। वह कई दिन के अनुरोध के बाद अपने पति को इधर ला सकी थी और उन्हों ने जी-भर खाया-पिया और खरीद किया था। अनारकली के मध्य बङ्गाली रसगुल्लों की जो दूकान है, वहाँ से रसगुल्ले खाने को शान्ति का बड़ा मन होता था, पर उसके पति को कभी इतनी फ़ुर्सत ही न हुई थी कि वहाँ तक सिर्फ़ रसगुल्ले खाने के लिए जा सकें। अस्पताल रोड के सिरे पर हलवाई के साथ चाट वाले की जो दूकान है वहाँ से चाट खाने को शान्ति की बड़ी इच्छा थी, पर चाट ऐसी निकम्मी चीज खाने के लिए काम छोड़ कर जाने का

अवकाश शान्ति के पति के पास कहाँ ? कई दिनों से वह अपने उम्मी के लिए कुछ गर्म कपड़ों के टुकड़े ख़रीदना चाहती थी। सर्दी बढ़ रही थी और उसके पास एक भी कोट न था। और फिर गर्म कपड़ा न सही, वह चाहती थी कि कुछ ऊन ही मोल ले ली जाय, ताकि नन्हें का स्वेटर बुन दिया जाय। पर उसके पति 'हूँ', 'हाँ' करके टाल जाते थे, किन्तु उस दिन वह निरन्तर महीने तक अनुरोध करने के बाद उन्हें अपने साथ अनारकली ले जाने में सफल हुई थी। और उस दिन उन्होंने जी-भर बंगाली के रसगुल्ले और चाट वाले की चटपटी चाट खाई थी, बल्कि वापे में मोहन के पकौड़े और मटरोंवाले आलुओं का स्वाद भी चखा था। फिर उम्मी के लिए कपड़ा भी ख़रीदा था और ऊन भी मोल ली थी और दो आने दर्जन ब्लेडों वाली गुडबोग की डिबिया तथा एक कालगेट साबुन की दो आने वाली टिकिया उसके पति ने भी ख़रीदी थी। कई दिनों से वे उन्हीं पुराने ब्लेडों को शीशे के ग्लास से तेज करके नहाने वाले साबुन ही से हजामत बनाते आ रहे थे और उस दिन शान्ति ने यह सब ख़रीदने के लिए उन्हें बस विवश कर दिया था। और दोनों जने यह सब ख़रीद कर ख़र्च करने के आनन्द की अनुभूति से पुलकित चले जा रहे थे।

दिसम्बर का महीना था और सूखा जाड़ा पड़ रहा था। शान्ति ने अपने सस्ते पर गर्म शाल को नन्हें के गिर्द और अच्छी तरह लपेटते हुए अचानक कहा—निगोड़ा सूखा जाड़ा पड़ रहा है। सुनती हूँ नगर में बीमारी फैल रही है।

पर उसके पति चुपचाप धुएँ के कारण कड़वी हो जाने वाली अपनी आँखों को रूमाल से मलते चले आ रहे थे।

शान्ति ने फिर कहा—हमारी अपनी गली में कई लोग बीमार हो गये हैं। परसों टेण्डो चमार का लड़का निमोनिया से मर गया।

तभी शाल में लिपटा-लिपटा बच्चा हल्के-हल्के दो बार खाँसा और शान्ति ने उसे और भी अच्छी तरह शाल में लपेट लिया।

उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके उसके पति ने कहा—आज बेहद बदपरहेज़ी की है, पेट में सख्त गड़बड़ हो रही है।

× × ×

घर आकर शान्ति ने जब लड़के को चारपाई पर लिटाया और मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसके बालों को पिछली तरफ़ किया तो वह चौंककर पीछे हटी। उसने डरी हुई निगाहों से अपने पति की ओर देखा। वे सिर को हाथों में दबाये नाली पर बैठे थे।

उम्मी का माथा तो तवे की तरह तप रहा है—उसने बड़ी कठिनाई से गले को अचानक अवरुद्ध कर देने वाली किसी चीज़ को बरबस रोक कर कहा।

लेकिन उसके पति को क़ै हुई।

शान्ति का कण्ठ अवरुद्ध-सा होने लगा था और उसकी आँखें भर-सी आई थीं, पर अपने पति को क़ै करते देख बच्चे का ख्याल छोड़ वह उनकी ओर भागी। पानी लाकर उनको कुल्ला कराया। निढाल-से होकर वे चारपाई पर पड़ गये पर कुछ ही क्षण बाद उन्हें फिर मतली हुई।

शान्ति के हाथ-पाँव फूल गये। घर में वह अकेली।

भास—माँ पास नहीं, कोई दूसरा नाता-रिश्ता भी समीप नहीं, और नौकर—नौकर रखने की गुञ्जाइश ही कभी नहीं निकली। वह कुछ क्षण के लिए घबरा गई। एक उड़ी-उड़ी-सी दृष्टि उसने अपने ज्वर से तपते हुए बच्चे और बदहज़मी से निढ़ाल पति पर डाली। अचानक उसे गोमती का खयाल आया। शान्ति अकेली कभी गली में नहीं उतरी थी, पर सब संकोच छोड़ वह भागी-भागी नीचे गई। अपनी कोठरी के बाहर, गली की ओर मात्र ईंटों के छोटे-से पर्दे की ओट से बने हुए, रसोई घर में बैठी गोमती रोटी बेल रही थी और चूल्हे की आग से उसका काला मुख चमक-सा रहा था। शान्ति ने देखा—उसका बड़ा भाई अभी खाना खाकर उठा है। तब आगे बढ़ कर उसने इशारे से गोमती को बुलाया। तवे को नीचे उतार और लकड़ी को बाहर खींचकर गोमती उसी तरह भागी आई। तब विनीत-भाव से संक्षिप्त में शान्ति ने अपने पति तथा बच्चे की हालत का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि वह अपने भाई से कह कर तत्काल किसी डाक्टर को बुला दे। उनकी लांडरी के साथ ही जिस डाक्टर की दुकान है, वह सुना है पास ही लाज रोड पर रहता है, यदि वह आ जाय तो बहुत ही अच्छा हो। और फिर साड़ी के छोर से पाँच रुपये का एक नोट खोल शान्ति ने गोमती के हाथ में रख दिया कि फ़ीस चाहे पहले ही क्यों न देनी पड़े, पर डाक्टर को ले अवश्य आये। और फिर चलते-चलते उसने यह भी प्रार्थना की कि रोटी पका कर सम्भव हो तो तुम ही ज़रा आ जाना, उम्सी...

शान्ति का गला भर आया था। गोमती ने कहा था—आप घबरायें नहीं, मैं अभी भाई को भेज देती हूँ और मैं भी

अभी आई और यह कह कर वह भागती-सी चली गई थी।

शान्ति वापस मुड़ी, तो सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने महसूस किया कि शंका और भय से उसके पाँव काँप रहे हैं और उसका दिल धक-धक कर रहा है।

ऊपर जाकर उसने देखा—उसके पति ऊपर से उतर रहे हैं। हाथ में उनके ख़ाली लोटा है, चेहरा पहले से भी पीला हो गया है, और माथे पर पसीना छूट गया है।

शान्ति के उड़े हुए चेहरे को देख कर उन्होंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—घबराओ नहीं, सर्दियों में हैज़ा नहीं होता।

शान्ति ने रोते हुए कहा—आप ऊपर क्यों गये, वहीं नाली पर बैठ जाते। किन्तु जब पति ने नाली की ओर और फिर चारपाई पर पड़े हुए बीमार बच्चे की ओर इशारा किया, तो शान्ति चुप हो गई। उस ने पहले सहारा देकर पति को बिस्तर पर लिटाया, फिर नाली पर पानी गिराया, फिर दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा, बच्चे को उस पर लिटा आई। तभी गोमती आ गई। खाना तो सब खा चुके थे, अपने हिस्से का आटा उठा, आग बुझा, वह भाग आई थी।

शान्ति ने कहा—मैं उम्मी को उधर कमरे में लिटा आई हूँ। मुझे डर है उसे सर्दी लग गई है साँस उसे और भी कठिनाई से आने लगा है और खाँसी भी बढ़ गई है। निचली कोठड़ी में पड़े हुए पुराने लिहाफ़ से लोगड़ ले लो और अँगीठी में कोयले डाल उस की छाती पर ज़रा लोगड़ से सेंक दो। इन के पेट में गड़बड़ है। मैं इधर इस का कुछ उपचार करती हूँ। कुछ नहीं तो गर्म पानी करके बोतल ही फेरती हूँ।

गोमती ने कहा—इन्हें बीबी जी कोई हाजमे की चीज़ दो। हमारे घर तुम्मे की अजवाइन है। मैं उस में से कुछ लेती आई हूँ, जब तक डाक्टर आये उसे ही ज़रा गर्म पानी से इन्हें दे दे

बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के शान्ति ने मैली-सी पुड़िया में बँधी काली-सी अजवाइन ले ली थी और गोमती अँगीठी में कोयले डाल नीचे लोगड़ लेने भाग गई थी।

× × ×

बाहर शाम बढ़ चली थी। वही कमरे के अँधेरे में बैठे-बैठे शान्ति की आँखों के आगे चिन्ता और फ़िक्र के वे सब दिन-रात फिर गये। उसके पति को हैज़ा तो न था किन्तु गैस्ट्रो एन्टिराइटिस (Gostro enteritis) तीव्र क़िस्म का था। डाक्टर के आने तक शान्ति ने गोमती के कहने पर उन्हें तुम्मे की अजवाइन दी थी, प्याज भी सुँघाया था और गोमती अँगीठी उठा कर दूसरे कमरे में बच्चे की छाती पर सेंक देने चली गई थी। डाक्टर के आने पर मालूम हो गया था कि उसे निमोनिया हो गया है और अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

शान्ति अपने पति और अपने बच्चे, दोनों की एक वक्त कैसे तीमारदारी करती, उसने विवशता से गोमती की ओर देखा था। पर उसे ओंठ हिलाने की ज़रूरत न पड़ी थी, बच्चे की सेवा-शुश्रूषा का समस्त भार गोमती ने अपने कंधों पर ले लिया था। शान्ति को मालूम भी न हुआ था कि वह कब घर जाती है, कब घर वालों को खाना खिलाती है या खाती है या खिलाती खाती भी है या नहीं। उसने तो जब देखा उसे छाया की भाँति बच्चे के पास पाया। कई दिन तक एक ही जून खाकर

गोमती ने बच्चे की तीमारदारी की थी।

× × ×

दोपहर का समय था, उसके पति दूकान पर गये हुए थे। उम्मी को भी अब आराम था और वह उस की गोदी से लगा सोया पड़ा था और उस के पास ही फ़र्श पर टाट बिछाये, गोमती पुराने ऊन के धागों से स्वेटर बुनना सीख रही थी। इतने दिनों की थकी-हारी उनींदी शान्ति की पलकें धीरे-धीरे बन्द हो रही थीं, वह उन्हें खोलती थी पर वे फिर बन्द हो हो जाती थीं। आखिर वह वैसे ही पड़ी-पड़ी सो गई थी। जब वह फिर उठी तो उस ने देखा, उम्मी रो रहा है, और गोमती उसे बड़े प्यार से सुरीली आवाज़ में थपक-थपक कर लोरी दे रही है। शान्ति ने फिर आँखें बन्द कर लीं। उस ने सुना गोमती धीमे-धीमे स्वर से गा रही थी।

आ री कक्को, जा री कक्को, जङ्गल पको बेर
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा !

और फिर:

आ री चिड़ैया! दो पप्पड़ा पकाए जा !
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा !

बच्चा चुप कर गया था। लोरी ख़त्म करके उसने बच्चे को गले से लगा कर चूम लिया। शान्ति ने अर्ध-निमीलित आँखों से देखा बच्चे के पीले ज़र्द हड्डियों से मुख पर गोमती का काला स्वस्थ मुख झुका हुआ है। सुख के आँसू उस की आँखों में उमड़ आये। उसने उठकर गोमती से बच्चे को ले लिया था और जब वह फिर टाट पर बैठने लगी थी तो दूसरे हाथ से शान्ति ने उसका हाथ पकड़ चारपाई पर बिठाते हुए,

उसे अपने बाज़ू से बाँध लिया था और कहा था—आज से तुम मेरी बहिन हुई गोमती !

× × ×

आँखें बन्द किये शान्ति इन्हीं स्मृतियों में गुम थी, उस की आँखों से चुपचाप आँसू बह रहे थे कि अचानक उस के पति अन्दर दाख़िल हुए। किसी ज़माने में लांडरी चलाने वाले और समय पड़ने पर, स्वयं अपने हाथ से स्त्री गर्म करके कपड़ों को प्रेस करने में भी हिचकिचाहट न महसूस करने वाले ला० दीनदयाल और लाहौर की प्रसिद्ध फर्म 'दीनदयाल एण्ड सन्ज़' के मालिक प्रख्यात शेयर ब्रोकर राय साहिब लाला दीनदयाल में महान अन्तर था। इस दस वर्ष के अर्से में उनके बाल यद्यपि पक गये थे, किन्तु शरीर कहीं अधिक स्थूल हो गया था। ढीले-ढाले, और लांडरी के मालिक होते हुए भी प्रायः मैले कपड़े पहनने की जगह अब उन्होंने अत्यन्त बढ़िया किस्म का रेशमी सूट पहन रखा था और पाँवों में श्वेत रेशमी जुराबें तथा काले हल्के सैंडल पहने हुए थे।

शान्ति ने झट रूमाल से आँखें पोंछ लीं।

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यह अँधेरे में क्या पड़ी हो। उठो बाहर बाग़ में घूमो-फिरो और फिर बोले इन्द्रानी का फ़ोन आया था कि बहिन यदि चाहें तो आज सिनेमा देखा जाय।

बहिन—दिल ही दिल में विषाद से शान्ति मुस्करायी और उसके सामने एक ओर काली-कलूटी-सी लड़की का चित्र खिंच गया जिसे कभी उसने बहिन कहा था। किन्तु प्रकट उसने सिर्फ़ इतना कहा—मेरी तबीयत ठीक नहीं !

मुँह फुलाए हुये ला० दीनदयाल बाहर चले गये।

बात इतनी ही थी कि आज दोपहर को जब वे ब्रिज खेल रहे थे तब नौकर ने आकर ख़बर दी थी कि महीलाल स्ट्रीट के पुजारी की लड़की गोमती आई है। तब खेल को बीच ही में छोड़कर, और भूलकर कि उसके पार्टनर राय साहब लाला बिहारीलाल हैं, वह भाग गई थी और उसने गोमती को अपनी भुजाओं में भींच लिया था और फिर वह उसे अपने कमरे में ले गई थी, तब दोनों बहुत देर तक अपने दुःख-सुख की बातें करती रही थीं। शान्ति ने जाना था कि किस प्रकार गोमती का पति काम करने लगा, उसे ले गया और चार बच्चों की माँ बना दिया और गोमती ने उम्मी का और दूसरे बच्चों का हाल पूछा था। ला० दीनदयाल इस बीच में कई बार बुलाने आये थे, पर वह न गई थी और जब दूसरे दिन आने का वादा लेकर उसने गोमती को विदा किया था तो उसके पति ने कहा था—तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड्ड और गँवार औरत को लेकर तुम बैठी रही, तुम्हें मेरी इज्जत का भी ख़याल नहीं। उसे बगल में लिये उन सब के सामने गुज़र गई। राय साहब और उनकी पत्नी हँसने लगे और आख़िर प्रतीक्षा कर कर के चले गये......

× × ×

आँखों को फिर एक बार पोंछ कर और तनिक स्वस्थ हो कर, शान्ति मेज़ के पास आई और कुर्सी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका, कलम उठाकर उसने लिखा—

बहिन गोमती—

तुम्हारी बहिन अब बड़ी बन गई है। बड़े आदमी की बीबी है। बड़े आदमियों की बीबियाँ अब उसकी बहनें हैं। पिँजरे

में बन्द पक्षी को कब इजाजत होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करने वाले अपने हमजोलियों से मिले ? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिए कहा था, पर अब तुम कल न आना। अपनी इस बन्दिनी बहिन को भूलने की कोशिश करना।

—शान्ति

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न कागज़ ही फाड़ा। हाँ, एक बार लिखते-लिखते फिर आँखें भर आने से जो एक-दो आँसुओं की बूँदें पत्र पर अनायास ही गिर पड़ी थीं उन्हें उसने ब्लाटिंग पेपर से सुखा दिया था। फिर पत्र को लिफ़ाफ़े में बन्द कर के उस ने नौकर को आवाज़ दी और उस के हाथ में लिफ़ाफ़ा दे कर कहा कि महीलाल स्ट्रीट में पूर्बियों के मन्दिर के पुजारी की लड़की गोमती को दे आवे। और फिर समझाते हुए कहा—गोमती, कुछ ही दिन हुए अपनी ससुराल से आई है।

पत्र ले कर नौकर चला ही था कि शान्ति ने उसे फिर आवाज़ दी और पत्र उस के हाथ से ले कर फाड़ डाला। फिर धीरे से उस ने कहा—तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो महीने तक वापस न लौटेंगी।

यह कह कर वह फिर खिड़की में जा खड़ी हुई और अस्त हो जाने वाले सूरज के स्थान पर ऊपर की ओर बढ़ते हुए अँधेरे को देखने लगी।

भावना

उस समय अपनी मृत पत्नी के सिरहाने खड़े खड़े कैलास की संगदिली की सभी घटनायें एक एक करके मेरी आँखों के सामने फिर गईं।

× × × ×

सायंकाल का समय था। छाया को बीमार पड़े कोई एक वर्ष बीता होगा। मैं नीचे आँगन में बैठा उसके लिए जोशाँदा तैयार कर रहा था कि वह ऊपर से उतरी और कुछ उदास-सी तेजी के साथ मेरे सामने से गुजर कर अपने कमरे में चली गई।

मैंने औषधि वहीं छोड़ दी और भागा-भागा अन्दर कमरे में पहुँचा। बिस्तर में मुँह छुपाये वह रो रही थी।

चुपचाप खड़ा, मैं कुछ क्षण उसे देखता रहा। मेरा दिल धड़क रहा था और मन में सन्देह था कि हो न हो किसी ने इसे अवश्य ही कोई न कोई चुभती बात कह दी है। कुछ ही

देर पहले तो वह ऊपर गई थी कि जरा हवा में लेटे । नीचे बहुत गर्मी थी। मैंने ही कहा था—यहाँ तो दम घुट रहा है, ऊपर चली जाओ, हवा में आराम करो, और वह इतनी जल्दी उतर आई थी। आगे बढ़ कर मैंने उसके कन्धे को छुआ । वह उसी तरह लेटी रही ।

मैंने कहा—छाया !

करवट बदल कर उसने मेरी ओर देखा। ज्वर के वेग से उसका चेहरा लाल हो रहा था और आँखें भरी हुई थीं ।

क्या बात है ? मैंने पूछा।

एक निमिष वह मेरी ओर देखती रही और फिर उसने कहा—मुझे अस्पताल में दाखिल करा दो ! और आँसू अनायास ही उसकी आँखों से बहने लगे ।

मैं चारपाई पर बैठ गया। उसका सिर अपनी गोद में लेकर मैंने उसकी आँखें पोंछीं। पूछा—कहो तो सही, क्या बात है ?

उसने सिसकते हुए कहा—मुझे दिक़ हो गया है। घर में रहूँगी तो दूसरों की जान जाने का भी डर रहेगा। अस्पताल में दाखिल करा दोगे तो जीवन के जो एक-दो दिन शेष हैं, आराम से कट जायँगे। फिर तुम्हें भी कुछ देर आराम मिलेगा और घर वालों को भी कष्ट न होगा।

मेरा गला सूखा जा रहा था। मैंने कहा—छाया ! तुम मेरे कष्ट का खयाल न करो। मेरी तो जान लेकर भी तुम्हें कोई नीरोग कर दे, तो देने में संकोच न करूँगा । यह तो बताओ, यह कहा किसने कि तुम्हें दिक़ हो गया है ।

कहेगा कौन ? दिखाई जो देता है, भाग्य में जो जो

सहना बदा है, सहना पड़ेगा; जो जो सुनना है, सुनना पड़ेगा। मैं तो यह सोचती हूँ कि यदि परमात्मा को उठाना ही था तो यों ही उठा लेता। तड़पने और तड़पाने के लिए यह रोग क्यों लगा दिया ?

मेरा गला भर आया। मैंने कहा—छाया ! मैं मिन्नत करता हूँ। तुम बताओ तो सही, तुमसे यह बात कही किसने ?

तुम शोर मचाओगे। मैं कहूँ क्या ?

मैं जरा भी न बोलूँगा। तुम कहो तो सही।

वह बोली—यहाँ दम घुट रहा था। तुमने अनुरोध किया तब ऊपर चली गई। ग़लती से अपने बिस्तर के बदले कैलास के बिस्तर पर लेट गई। उसने आते ही कहा—तुम्हें आप तो मरना है, दूसरों को साथ क्यों लिये मरती हो ? और न जाने उसने क्या क्या कहा। तुम्हीं बताओ, क्या मैंने जान-बूझ कर ऐसा किया ? मुझसे तो जहाँ तक होता है, स्वयं इस बात का ख़याल रखती हूँ, किसी को छूती तक नहीं, अपने बच्चे तक को गोद में नहीं लेती।

वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगी थी और मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया था। वहीं बैठा मैं अपनी बेबसी पर विचार करने लगा। जी में आता था, जाकर कैलास का और अपना सिर फोड़ लूँ, इतना शोर मचाऊँ कि सबके होश ठिकाने आ जायँ। यह सब माता-पिता की शिक्षा का ही तो परिणाम था, जो मुझे उसके पास जाने से रोकते थे, वे मेरे भाई को क्यों नहीं रोकते। उस समय मुझे माँ की पाठ-पूजा, नेम-धर्म, पाप-पुण्य की सब बातें निकम्मी और निरर्थक प्रतीत हुई और मैंने निश्चय कर लिया कि मैं छाया को लाहौर ले जाऊँगा। जहाँ

कैलास जैसे पाषाण बसते हों, वहाँ बीमार को रखना उसे जीते-जी मृत्यु के मुँह में झोंकना है।

उस रात मुझे नींद नहीं आई। जिस बात से मैं डरता था, अन्त को वही हुई। चाहता था, कोई इसका दिल न तोड़े, इसे अपने जीवन से निराश न करे और इस कैलास ने इससे वही बात कह दी—तुम्हें तो मरना है, हमें भी साथ क्यों लिये मरती हो। कितने कटु शब्द थे? इनका एक एक अक्षर मेरे हृदय में चुभा जा रहा था॥ उस समय अपनी बेबसी पर मेरे आँसू आ गये और मैंने चादर के अंचल से उन्हें पोंछ डाला। किन्तु दूसरे ही क्षण दुर्बलता का यह भाव दूर हो गया और दृढ़ता ने उसका स्थान ले लिया। मैंने निश्चय किया, प्रातः छाया को लेकर लाहौर चला जाऊँगा।

और अभी तीन ही बजे होंगे, मैंने माँ को जगाया और कहा—मैं लाहौर जा रहा हूँ।

वे आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगीं।

मैंने कहा—उठकर थोड़ा-बहुत सामान तय्यार करा दो।

उन्होंने मेरे बिखरे हुए बालों और उड़े हुए चेहरे की ओर देखा और कहा—पागल हो गये हो, जग्गू!

"हाँ।"

वे चुप हो गईं।

और फिर जल्दी-जल्दी तैयारी करके मैं ताँगा ले आया और जब हम चलने लगे तब मैंने बिस्तर पर सोते हुए बच्चे को उठाया।

माँ रो पड़ीं—इसे भी क्यों मुझसे छीन रहे हो?

मैंने बच्चे को वहीं छोड़ दिया। माँ के पाँव छुए और

छाया को लेकर तैयार हो गया। माँ ने चलते समय मेरे हाथ में दस दस रुपये के दो नोट रख दिये और कहा—और आवश्यकता होने पर लिखना। उन्होंने हमें रुद्ध कंठ से आशीश भी दी, किन्तु कैलास जागता हुआ भी नीचे न उतरा। हाँ, उसने इतना अवश्य किया कि जब बच्चा जाग कर रोने लगा तब उसने वहीं, ऊपर लेटे लेटे, उसे डाँट दिया। अन्दर की साँस अन्दर और बच्चा सहम कर चुप हो गया।

उस समय मेरे दिल की गहराइयों से बरबस एक दीर्घ निःश्वास निकल गया और मैं कुछ उन्माद की-सी दशा में सीढ़ियाँ उतर आया।

× × ×

फिर सात महीने बाद एक रात थी—दुख की तरह काली, मुसीबत की तरह भयानक। एक बजा होगा। मैंने अपने घर का दरवाज़ा खटखटाया और कोई आवाज़ न आने पर एक लम्बी साँस लेकर अपने समीप ही कुर्सी पर लेटी हुई दुर्बल और कृशकाय छाया पर नजर डाली। उन दोनों कुलियों को भी देखा जो स्टेशन से उसे उठा कर लाये थे। महल्ले के लैम्प की धीमी रोशनी में यह सब कुछ स्वप्न-सा दिखाई देता था।

मैंने दो बार आवाज़ दी और कुंडी खटखटाई। मकान की मुँडेर पर बैठे हुए जंगली कबूतरों ने डरकर पर फड़फड़ाये। ऊपर से कुछ ध्वनि-सी सुनाई दी, जैसे कोई जाग उठा हो। मैं कुंडी खटखटाने ही लगा था कि रुक गया। इन चन्द मिनटों में ये दुःखमय सात महीने अपनी विविध विपत्तियों के साथ मेरी कल्पना के सम्मुख फिर गये—लाहौर में हकीमों और डाक्टरों

के पीछे मारा मारा फिरना, सब ओर से निराश होकर अस्पताल की शरण लेना, ख़र्च चलाने के लिए दिन रात काम करना, एक्स-रे, यक्ष्मा का फ़तवा, अस्पताल के आशा और निराशा के दिन, कभी आशा का सहारा लेना, कभी निराशा का दामन पकड़ना, गर्मियों का कष्टदायक मौसम, पालमपुर, पहाड़ी पेचिश, वापसी, और अब हड्डियों का पिञ्जर यह पत्नी, वैसी ही काली रात और वही मकान जिसे सात महीने पहले छोड़ दिया था—सब कुछ आँखों के सामने फिर गया।

माँ ने दरवाजा खोला, मैंने चरण छुए, उन्होंने आशीश दी, छाया ने भी भरी हुई आवाज़ में प्रणाम किया, किन्तु उठ न सकीं। माँ ने आशीर्वाद दिया—शीघ्र ही स्वस्थ हो बेटी और अपने घर प्रसन्न रह। फिर छाया ऊपर के खुले और हवादार कमरे में पहुँचाई गई। कुलियों को मैंने मजदूरी दी, छाया के आराम का प्रबन्ध करके बाहर दालान में आया और माँ से संक्षिप्त रूप से अपने दुखों की कहानी कही। बच्चे को देखने के लिये मेरी रूह तड़प रही थी। माँ से पूछा कहने लगी—ऊपर कैलास के पास सोता है, अब तो 'चाचा' 'ताया' सब कुछ कह लेता है, हमारा तो डर मानता ही नहीं, बस उसी से डरता है।

मैं जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ नापता ऊपर कैलास के कमरे में पहुँचा। वह कदाचित् अभी पढ़कर सोया ही था, या शायद मेरी आवाज़ से जाग उठा था। उसने लैम्प जलाया। मेरा अढ़ाई वर्ष का बच्चा अरुण बचपन की मीठी मादक नींद सो रहा था। उसे क्या मालूम, उसकी माँ अपनी हसरतों और अरमानों, इच्छाओं और आशाओं के साथ, मौत की गहरी

अन्धकारमय खोह के मुँह पर पहुँच चुकी है और किसी घड़ी अथाह अन्धकार में लोप हो जायगी। उसे क्या मालूम, उसका पिता विपत्तियों के निरन्तर हमलों से थक गया है, हार गया है—वह तो सो रहा था कष्टों और दुखों से बेख़बर, शैशव की मीठी, मद-भरी नींद !

माँ ने हँसकर कहा—हम तुम दस आवाज़ें दें तो शायद न जागे, और कैलास अगर एक ही आवाज़ दे तो तत्काल जाग उठे। और कैलास से बोली—कैलास, ज़रा देना आवाज़।

कैलास ने अपनी शुष्क और भयानक हँसी के साथ, आवाज़ दी, बच्चे ने सोते-सोते कहा—हाँ जी।

कैलास ने कहा—उठ।

बच्चा उठने लगा।

"लेट जा।"

और बच्चा लेट गया।

—"गा !"

और सहमा हुआ वह सोते सोते तान लगाने लगा।

"उठ और नाच।" कैलास ने जैसे अपनी सफलता पर फूलते हुए गर्व से कहा।

बच्चा डरकर उठने लगा था कि मैंने उसे सीने से चिमटा लिया। इतनी संगदिली ! ऐसे ज़ालिम के साथ रह कर बच्चा क्या शोख़ और चञ्चल होगा ? उस जैसा शुष्क और गंभीर बन जाए तो सन्देह नहीं। लेकिन मैं तो बच्चों की चञ्चलता को प्यार करता हूँ, मुझे तो उनकी शोख़ी पसन्द है। जो बच्चा शोख़ नहीं वह बच्चा कैसा, वह तो बूढ़ा है। माँ ने कहा—बस डरता

है तो इसी गुरू से। मेरे मुँह पर तो थप्पड़ लगा देता है; हठी ऐसा है कि क्रोध आ जाय तो जो वस्तु हाथ में आय पटक देता है। किन्तु यदि कहीं कैलास ऊपर से भी कह दे—अरुण, तो बस वहीं का वहीं चुपचाप खड़ा हो जाता है। इसके पश्चात् माँ हँसी, किन्तु मैं बच्चे को सीने से चिमटाये अपनी चारपाई पर जा लेटा और सोचने लगा, माँ के जीते जी यह हाल है, उसके मरने के बाद क्या होगा ?

× × ×

फिर वह दृश्य भी मेरी आँखों के सामने घूम गया, जिसका ज़िक्र अभी-अभी माँ ने किया था, और एक बार मेरा रक्त खौल उठा। सुबह छाया अच्छी-भली थी। आज उसके जीवन का नाटक समाप्त हो जायगा, कम से कम इस बात की कोई आशंका न थी और मैं एक काम से कपूर्थला चला गया था। माँ ने मुझे बताया कि लगभग चार बजे महल्ले में फेरी लगा कर कपड़ा बेचने वाला आया और छाया ने उससे कपड़े ख़रीदे। फिर दर्ज़ी को बुला कर उसे सीने के लिए दिये। इस के पश्चात् अचानक उसकी तबीअत घबरा गई और उसने कहा—माँ, पानी पिलाओ। मालूम होता है, अन्तिम घड़ी आ पहुँची है। माँ ने उसे पानी पिलाया। इसके पश्चात् वह अचेत हो गई और उसकी साँस चलने लगी। घर में उस वक्त माँ और कैलास के अतिरिक्त कोई न था और चारपाई या ऊपर की मंज़िल में मर जाना हिन्दुओं में बुरा समझा जाता है। माँ ने कैलास की मिन्नत की—किसी तरह मेरी सहायता करके इसे नीचे पहुँचा दो। किन्तु उसे उठाना तो दूर, वह तो बीमार के कमरे के पास भी न फटकता था और माँ ठहरीं पतली-दुबली

और दुर्बल। किन्तु चारपाई पर मरने से उसकी आत्मा नरक में जायगी, इस डर से जिस तरह बन पड़ा उन्होंने उसे उठाया, सीढ़ियों तक भी न ले जा सकीं, वहीं ज़मीन पर रख दिया और कैलास को आवाज़ दी। वह उतरा भी नहीं। अन्त को इसी तरह घिसटती-घिसटाती उसे नीचे लाईं और लाकर ठंडे फ़र्श पर लिटा दिया। मनुष्य और उसका अहंकार! मृत्यु के पश्चात् तेरी जो दुर्गति हो उसकी तो ख़ैर; मौत से पहले भी तेरी यह दुर्दशा हो सकती है!

उस समय छाया को होश आया और किसी अज्ञात शक्ति के बल पर वह ज़रा-सा उठी। उसने आँखें फाड़कर इधर-उधर देखा। कदाचित् मृत्यु के आगमन से डर गई थी। मैं कहाँ हूँ?

माँ ने कहा—तुम्हारी तबीअत घबरा गई थी।

मुझे ऊपर ले चलो।

किन्तु उत्तर सुने बिना वह लेट गई और फिर नहीं उठी।

माँ ऊपर जाकर उस का बिस्तर ले आईं, उन्होंने बिस्तर उसके नीचे बिछाया, सिरहाने दाने रक्खे और दिया जला दिया।

मृत्यु से पहले मेरी पत्नी की जो दुर्दशा हुई उसका हाल सुनकर मुझ पर उन्माद-सा छा गया। चाहा कि मर जाऊँ या मार दूँ, किन्तु अवसर ही ऐसा था, ख़ून के घूँट भर कर रह गया। बेबसी ने मेरी ज़बान बन्द कर दी। आँखों ने उसके पिचके हुए गालों, बन्द आँखों और सटे हुए ओठों को देखा और रो दी।

सुबह उसका शव आग को सौंप दिया गया। मैंने

अन्तिम बार उसकी सूरत देखी थी। सुन्दर चाँद-से चहरे पर स्याही फिर गई थी, भरे हुए गाल पिचक गये थे, और आँखें गढ़ों में बन्द थीं। हाँ, दाँत वही थे—खूबसूरत, श्वेत दाँत, जिनसे ओठ ऐसे चिमट गये थे, जिस तरह शरीर को मौत चिमट गई थी। इस कलेबर में कितना कोमल और भोला-भोला दिल था। उसे कितनी जल्दी ठेस पहुँच जाती थी। किन्तु अब···अब··· यह निष्ठुर धरती, ये सूखी लकड़ियाँ और यह आग! संतोष का बाँध टूट गया, रुलाई आ गई, खूब जी भर कर रोया। वापस आया तब सिर भारी था। आकर चुपचाप कमरे में लेट गया। दिन भर शोक करने के निमित्त आनेवालों का ताँता बँधा रहा, किन्तु मुझे इन सब बातों से घृणा थी।

भाई के रूखे व्यवहार ने मेरे दुःख को दुगुना कर दिया था।

× × ×

जब बारहवें दिन क्रिया-कर्म से निबट कर लाहौर जाने को तैयार हुआ तो उस समय अचानक कैलास ने आकर कहा—भाई साहब, आप अरुण को डाक्टर को दिखाए जाते तो अच्छा था। उसकी तबीअत कुछ ठीक नहीं रहती। मैंने एक निमिष के लिए अपने बच्चे को देखा, जो कैलास की गोद से चिमटा हुआ था—कमज़ोर और उदास! मैंने उसे गोद में उठा लिया। इन दिनों मैं उसकी ओर से बे-परवा-सा हो गया था। वास्तव में अपने दुःख में मैं अपने आपको, अपने बच्चे को, सबको भूल गया था। छाया की मृत्यु सम्भावना से दूर न थी, सामने दिखाई ही देती थी, किन्तु फिर भी, प्यार और मुहब्बत के, एकता और अनन्यता के चार वर्षों के बाद यह बिछोह!

तबीअत पर उन्माद और उदासी छाई थी । मैंने उस गाड़ी से जाने का विचार छोड़ दिया और बच्चे को डाक्टर के यहाँ ले गया। कोई विशेष रोग तो था नहीं, हाँ, दुर्बलता थी और गले में कुछ गिल्टियाँ थीं। डाक्टर साहब ने उसे ताक़त की दवाई दी और गले पर आयोडेक्स लगा दिया । शाम को जब मैं फिर जाने लगा तब कैलास ने आकर पूछा—भाई साहब, डाक्टर ने क्या आदेश दिया है ? मैंने कहा—यह ताक़त की दवा है। एक चम्मच प्रातः-सायं इसे पिला दिया करना । मैं आयोडेक्स तुम्हें लाहौर से भेज दूँगा और कोई अच्छी-सी शक्तिवर्धक ओषधि भी।

और अभी लाहौर आये मुझे कुछ ही दिन हुए थे कि कैलास का पत्र पहुँचा । लिखा था—भाई साहब, आयोडेक्स भेज दीजिए। मेरी तबीअत वहाँ से आने के बाद कुछ ठीक न रही थी, कुछ विचित्र प्रकार का आलस जी पर छाया रहता था। मैं ओषधियाँ न भेज सका । कैलास के दो पत्र और आये, किन्तु मुझे कुछ हरारत रहने लगी थी, फिर उसका एक और पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था—ताक़त की दवा ख़त्म हो गई है, इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ । अच्छा हो यदि आप कोई दूसरी ओषधि भेज दें। उस दिन मेरी तबीअत ठीक न थी। सुबह से कुछ हरारत भी अधिक थी, तो भी मैं डाक्टर के यहाँ गया। उसके आदेशानुसार मैंने 'क्रीमाल्ट सिरप' की एक शीशी ख़रीदी और एक औंस आयोडेक्स लेकर वापस लौटा। सोच रहा था कि किस तरह दोनों चीजें भेजूँ कि इतने में कैलास का तार आया—अरुण की दशा शोचनीय है। शीघ्र पहुँचो ।

मेरे हाथ-पाँव फूल गये। टाइम-टेबल देखा, गाड़ी छूटने में पन्द्रह मिनट थे, भागा-भागा स्टेशन पर पहुँचा। इधर मैंने पायदान पर पाँव रक्खा, उधर गाड़ी चल दी। आकर सीट पर बैठ गया और फिर लेट गया।

एक यात्री ने पूछा—आपकी तबीअत ठीक नहीं क्या?

किन्तु मैं बोला नहीं, चुप-चाप लेटा रहा। ठीक समय पर गाड़ी लोहियाँ पर रुकी। मैं जल्दी-जल्दी टिकट देकर घर को भागा। थोड़ा-सा मार्ग था, पर समाप्त होने में ही न आता था। कुछ ज्वर और कुछ चिन्ता से पाँव काँप रहे थे। घर पहुँचा, देखा, बच्चे को बहुत तेज बुखार है और ज्वर की तीव्रता से उस पर बेहोशी छाई है। मैं भागा-भागा डाक्टर को लाया। मालूम हुआ, निमोनिया हो गया है, अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। तनिक-सी असावधानी से बच्चे की जान जा सकती है।

मुझे स्वयं उस समय ज्वर था। मैंने बेबसी की आँखों से कैलास की ओर देखा, किन्तु शायद डाक्टर की बात से उसके दिल को धक्का पहुँचा था। बच्चे से उसे बहुत प्यार हो गया था। दिन-रात वह उसके साथ ही रहता था। मैंने देखा, कैलास का रङ्ग पीला पड़ गया है और वह टकटकी बाँधे बच्चे की ओर देख रहा है—हसरत भरी आँखों से, उस साहूकार की भाँति जिसके सामने उसका सब कुछ लुट रहा हो।

मैंने उसके कन्धे को छुआ।

वह चौंक पड़ा।

मैंने कहा—मुझे कुछ हरारत-सी हो रही है, जाओ डाक्टर साहब के यहाँ से औषधि ले आओ। और चुपचाप

वह डाक्टर साहब के साथ चला गया।

× × ×

इसके बाद जिस परिश्रम और सावधानी से, जिस प्यार और लगन से उसने बच्चे की सेवा की, वैसी न तो मैं और न उसकी स्वर्गीय माँ ही कर सकती। सारी-सारी रात वह उसके सिरहाने बैठा रहा, समय समय पर दवाई पिलाता रहा, और मैं, मैं चेतना हीन-सा, शक्तिहीन-सा काम करता था।

एक रात बादल घिर आये, बिजली चमकने लगी और वायु के वेग से मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठे। मेरा दिल बैठ गया। बच्चे की दशा कुछ सुधर रही थी, ख़याल था कि यदि और कुछ दिन ऐसे ही बीत गये तो आराम आ जायगा, किन्तु यह कम्बख़्त घटाएँ, इनको आज ही उठना था। हमने दरवाज़े लगा दिये, कमरे में अँगीठी जला दी। कोई ११ बजे बच्चा तेज़, उखड़ी-उखड़ी, साँस लेने लगा। मैंने कैलास से कहा—किसी तरह डाक्टर को बुला लाओ। आसार अच्छे नहीं दिखाई देते। चुपचाप कैलास चल दिया। खिड़की के शीशे से मैंने देखा—मूसलाधार मेह बरस रहा है, एक हाथ में टार्च और दूसरे में छाता सँभालता, वायु के वेग का, अँधेरे का, वर्षा का मुक़ाबिला करता कैलास जा रहा है। शरीर पर केवल एक कमीज़ और निकर !.........सहसा आशङ्का से मेरा हृदय धड़क उठा। मैंने ज़रा-सी खिड़की खोलकर उसे ज़ोर से आवाज़ दी—कैलास, कम्बल लेते जाओ। सर्दी खा जाओगे। किन्तु उसने शायद नहीं सुना या सुनकर भी वापस मुड़ना उचित नहीं समझा। उन्मादियों की भाँति वह बढ़ता ही गया। मैंने खिड़की बन्द कर दी और दीर्घ निश्वास छोड़कर बच्चे के सिरहाने आ बैठा।

कोई एक घण्टे के बाद डाक्टर आया, अपना निचुड़ता हुआ कोट खूँटी पर टाँगकर, आग ताप कर, डाक्टर ने स्टेथेस्कोप निकाला, बच्चे का निरीक्षण किया, एक दवा का कुछ अंश चम्मच में डालकर उसके मुँह में उँडेल दिया।

आज की रात यदि बच गया तो डर नहीं—यह कहकर डाक्टर ने कोट पहना, छाता उठाया और चलने को उद्यत होते हुए मेरी ओर देखा। मैंने कोट की जेब से दस रुपये निकालकर उसकी फ़ीस दी। डाक्टर चला गया, कैलास भी दवाई लेने उनके साथ गया। सारी रात हम साँस रोके बच्चे की हालत देखते रहे, समय के अनुसार दवा पिलाते रहे, किन्तु इस तमाम परिश्रम, मेहनत और सावधानी के बावजूद बच्चे को न बचना ही था और न बचा। रात के पिछले पहर मेरा शरीर शिथिल हो रहा था, अंग-अंग दुख रहा था, इसलिए मैं कैलास को उसके सिरहाने खड़ा छोड़कर वहीं फ़र्श पर लेट गया।

माँ की चीख़ से मैं जाग पड़ा। देखा कि बच्चा फ़र्श पर मृत पड़ा है और रोशनदानों से सुबह का प्रकाश कमरे में झाँक रहा है, शायद उसे जगाने के लिए आया था। किन्तु उसे क्या खबर कि सोनेवाले ने तो मौत से होड़ लगा ली है। वह न जागेगा, न जागेगा, अपनी माँ के पास चला गया है वह।

अभी एक घाव भरा भी न था कि दूसरा लगा। दिन होते होते घर भर में कोहराम मच गया और मैं तो इतना निराश हुआ कि हिम्मत हार बैठा। पर चाहे कुछ हो, अब जब वह मर गया था, उसे आख़िरी मंज़िल पर पहुँचाने का प्रबन्ध भी तो करना था। और मैं अपने आपको इतना शिथिल, इतना कमज़ोर महसूस करता था कि श्मशान तक जाना मुझे दूभर

दिखाई देता था। स्त्रियों ने नहला-धुलाकर बच्चे को क़फ़न में लपेट दिया। पण्डित ने आवश्यक रस्में अदा की। बैठक में बिरादरी के कुछ लोग भी जमा हो गये। लेकिन शव को उठाकर कौन ले जाए? मैं जब से आया था, ज्वर से पीड़ित था, और फिर यह चोट! मैंने कैलास को आवाज़ दी। वह वहाँ न था। सब कमरों में ढूँढ़ा, न मिला, अन्त को गिरता-पड़ता ऊपर गया। उसके कमरे में पहुँचा। अपने बिस्तर पर वह औंधे मुँह लेटा पड़ा था।

मैंने उसे आवाज़ दी, न बोला; हिलाया, न हिला। ज़रा ज़बरदस्ती से मैंने उसका मुँह अपनी ओर किया, आँखें लाल थी और बिस्तर आँसुओं से भीग गया था।

मैंने कहा—कैलास, हौसला करो।

और वह जिसे मैं पाषाण कहा करता था, बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा।

मोती

यह सब कैसे हुआ, यह तो मुझे मालूम नहीं, पर 'ऋषि-नगर' के नये घर में आने के दो दिन बाद ही अपने पड़ौसी पंडित गोविन्दराम और उनके घरवालों से हम सब इस तरह घुल-मिल गए, जैसे युग-युग से हमारा परिचय हो। बच्चे थे कि सारा दिन उनके आँगन में खेलते रहते, स्त्रियाँ थीं कि काम-काज से छुट्टी पाकर उनकी ड्योढ़ी में जा बैठतीं और मैं भी उधर से गुज़रता हुआ उन्हें 'नमस्कार' करने, या हाल-चाल पूछने के लिये रुक जाया करता। इसीलिये जब छोटे मोहन की ज़िद पर मैंने उसे कुत्ते का सुन्दर पिल्ला ला दिया, तो उसी समय पिल्ले को गोद में लेकर अपने नये 'ताया' को दिखलाने के लिये वह मचल उठा और मुझे हाथ-मुँह धोने की छुट्टी भी न देकर जैसे अँगुली से पकड़ खींचता हुआ उनकी बैठक में ले गया।

पंडित गोविन्दराम कोई पचपन-छप्पन वर्ष के गम्भीर

प्रकृति के सहृदय व्यक्ति थे। जमाने के उतार-चढ़ाव उन्होंने बहुत देखे थे, और परिस्थितियाँ उनके चेहरे पर अपनी छाप छोड़ गई थीं। बाल खिचड़ी हो गए थे और कनपटी के पास तो बिलकुल श्वेत थे, चेहरे पर मांस कुछ लटक गया था। कोट जो वे पहना करते, बहुत लम्बा और ढीला होता और पतलून बहुत तंग। किसी ज़माने में यही फ़ैशन था, तब बहुत मँहगा कपड़ा लेकर उन्होंने सूट सिलवाए थे, पर फ़ैशन ठहरा अस्थायी चीज़। समय आया कि पतलूनें खुलती-खुलती पाजामे बन गईं और कोट छोटे होते-होते वास्केट हो गए। पंडित जी की हालत ने भी पलटा खाया। सेना में एकाऊँटेंट थे, पैसा भी पास अच्छा था। एक रिश्तेदार को कारोबार में शीघ्र धनी होते देख कर आपको शौक चर्राया, तो एक वर्ष की छुट्टी लेकर भाग्य आजमाने बम्बई जा पहुँचे और 'स्टाक-शेयर्स' का काम आरम्भ कर दिया। पहले बहुत लाभ हुआ, पर फिर घाटा आया, और साथ ही जल-वायु माफ़िक न आने से बीमार पड़ गए। विवश हो, क्षति उठा, कारोबार समेट वापस आ गए, पर नौकरी बहुत देर न कर सके। साहब दयालु था, पेन्शन ले ली और लाहौर में आकर ऋषि-नगर में एक मकान बनवा लिया। जो जमा-जत्था रह गई थी, उससे शीशों का कारोबार आरम्भ कर दिया। साठ एक रुपये पेन्शन आती थी, दूकान से भी कुछ बच जाता था, पर घर का ख़र्च बढ़ा हुआ था। अकेला आदमी और उस पर इतने लोगों का बोझ, बच्चों के कपड़े ही बन जायँ तो ग़नीमत, इसी लिये स्वयं वही पुराने ढीले-ढाले सूट डाले जाते थे।

दिन-भर के थके हुए आकर अपनी बैठक में एक आराम कुर्सी पर बैठे चुपचाप छत की ओर देख रहे थे कि मोहन ने

चिल्लाकर कहा—"ताया जी, हम कुत्ता लाए हैं!" और फिर उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसने मेरी ओर इशारा कर दिया—"बाबू जी ने लाकर दिया है।"

पंडित जी कुर्सी पर उठकर बैठ गए और मेरी ओर देख कर बोले—"आओ भाई, बैठो।"

मोहन ने उसी आह्लाद के स्वर में कहा—"इसका नाम रखेंगे 'मोती' !"

मैंने देखा, एक निमिष के लिए एक बादल-सा पंडित जी के चेहरे पर आया और चला गया। मोहन ने कुत्ते का पिल्ला उनकी गोद में रख दिया। हड़बड़ा कर उसे शीघ्र मोहन को लौटाते हुए और मुझे हाथ खींचकर अपने पास वाली कुर्सी पर बिठाते हुए उन्होंने कहा—"देखो भई, इस पिल्ले को जहाँ से लाए हो, वहीं दे आओ।" और फिर मोहन को सहमे हुए देख कर उस से बोले—"जा बेटा, बाहर जाकर खेल।"

एक बार मेरी ओर करुण दृष्टि से देख और पिल्ले को और भी ज़ोर से अपनी गोद से चिपटाए मोहन बाहर चला गया। पंडित जी उसके पीछे-पीछे गए और उसके जाने पर दरवाज़ा बन्द करके वापस आते हुए बोले—हवा बहुत तेज़ चल रही है।" और यह कहते हुए वे आकर आराम-कुर्सी पर बैठ गए और मेरे बाजू को थपथपाते हुए कहने लगे—"मोहन को निराशा तो अवश्य हुई होगी; पर खैर, तुम इस पिल्ले को लौटा देना।"

मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से उनकी ओर देखा।

वे बोले—"वास्तव में हम कुत्ते पाल नहीं सकते और पाल भी लें, तो हमारे घरों का और गली-मुहल्ले का वातावरण

कुत्ते पालने के हक़ में अच्छा भी नहीं।"

मैं कुछ कहने ही लगा था; पर जैसे मेरे मन की बात भाँपते हुए उन्होंने कहा—"अंगरेज़ों की बात जाने दो, सभ्य शिक्षित बँगलों में रहने वाले भारतीयों की बात भी जाने दो; पर हम गली-मुहल्लों में रहने वाले, हमारे लिए कुत्ते-बिल्लियों का पालना कठिन है। वातावरण ही नहीं, और फिर सच पूछो, तो हमारा शौक भी उन जैसा नहीं। अपने बच्चों की भाँति हम कुत्तों को कहाँ पाल सकते हैं?"

कुछ क्षण के लिए पण्डित जी मौन हो गए। मैं चुप बैठा उनके उद्विग्न चेहरे की ओर देखता रहा। कुछ क्षण बाद बोले—"मैंने भी, अनन्तराम, एक कुत्ता पाला था। मैंने कहाँ पाला था, वास्तव में तब मैं पेशावर में था तो हमारे एक सहकारी क्लर्क के यहाँ कुतिया ने बच्चे दिये। पिल्ले थे सुन्दर। बलराज था तब छोटा, पीछे पड़ गया। लाचार उनसे माँगकर मैं एक पिल्ला ले आया। था भी बड़ा हृष्टपुष्ट। बलराज को तो मानो साथी मिल गया। बस दिन-रात उसी की ख़ातिरदारी हो रही है। कभी दूध पिलाया जा रहा है, कभी सैर कराई जा रही है, कभी गेंद उठा लाना सिखाया जा रहा है। वातावरण भी अच्छा था। उनके और हमारे क्वार्टर साथ-साथ थे। उनके बच्चे अपने-अपने कुत्ते को लेकर बाहर सैर को जाते, तो बलराज मोती को ले जाता। हाँ, मोती ही उसका नाम रखा गया था। आपने देखा नहीं, सुन्दर कुत्ता था—सुन्दर और बलिष्ठ, आँखों की भूख मिटती थी। कुछ दिनों में ही बड़ा हो गया और बिल्कुल भेड़िये-जैसा मालूम होने लगा, परन्तु इसके बावजूद मजाल है, जो किसी को जरा-सी तकलीफ़ दे जाए। जो भी उसे देखता था, ख़ुश

हो जाता था।

एक दिन हम सैर कर रहे थे कि हमारे साहब रास्ते में मिल गए, और हम उनके साथ-साथ चलने लगे। साहब ने कई बार मोती को ऐसी आँखों से देखा, जिनमें प्रशंसा के साथ लालसा भी थी। वे रह न सके। उन्होंने मोती को मुझ से माँग ही लिया।

साहब मेरे बड़े मेहरबान थे। मैंने कहा—"साहब इससे अधिक खुशी मुझे किस बात में हो सकती है" और यह कहते हुए मैंने बलराज के हाथ से मोती की जंज़ीर लेकर साहब को पकड़ानी चाही; पर बलराज मच गया, ज़मीन पर लेट कर रोने लगा। मैंने झिड़का भी पर साहब ने हँसकर कहा—'नहीं, बच्चे को मत रुलाओ', और उन्होंने स्वयं बलराज को उठाकर कुत्ते की जंजीर मेरे हाथ से लेकर उसे पकड़ाते हुए उसकी पीठ को थपथपा दिया।"

पंडित जी इतना कह और दीर्घ निःश्वास छोड़ कर कुर्सी पर लेट गए और कुछ क्षण तक छत की ओर ताककर कहने लगे—"तुम्हें तो मैं बता चुका हूँ, अनन्तराम, कि किस तरह मेरे हालात ने पलटा खाया, किस प्रकार मैं बम्बई गया, किस प्रकार वहाँ से लौट कर पेन्शन लेने को विवश हुआ। यहाँ आकर मैंने यह मकान डाल लिया। लाहौर के किरायों का बोझ कहाँ तक उठाया जाय। जगह तो यहाँ ज़रा मँहगी मिली; पर नगर के तनिक समीप होने से मैंने ले ली, और फिर यह भी ख़याल था कि मोहल्ला बसा हुआ है, बाल-बच्चों को खेलने-फिरने को आराम रहेगा और घर की स्त्रियों को भी कष्ट न होगा। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है; मैं तो हर जगह खुशी से रह

सकता हूँ; पर स्त्रियों के लिए तो साथ के बिना बड़ी मुश्किल हो जाती है। मैं और लड़का जयराज तो दूकान पर चले जाते हैं, पास-पड़ौस से ही तो समय-कुसमय में सौ सहायता मिल जाती है। इसलिये इसी मोहल्ले में मकान बनवाकर एक तरह से मैंने सुख की साँस ली थी; पर यह न मालूम था कि यह बसा हुआ मोहल्ला ही एक दिन मेरे लिए मानसिक पीड़ा का कारण बन जायगा।"

कुछ क्षण तक चुप रहकर पंडित जी फिर कहने लगे—"यहाँ आकर हम सब तो खैर सुखी थे; पर मोती बेचारा बड़ा दुखी था। बलराज तो स्कूल जाने लगा था। हम दोनों दूकान को ही चले जाते हैं। रह गईं स्त्रियाँ, सो उनसे भला कुत्ते की खबरगीरी कैसे होती—न समय पर उसे खाना मिलता, न समय पर उसे नहलाया जाता और सैर की तो, भला क्या पूछते हो। बलराज को अब खेलने के लिए साथी मिल गए थे, पढ़ने के लिये पुस्तकें मिल गई थीं, अब उसे न बात करने वाले, न नये-नये खेल खेलने वाले, गूँगे कुत्ते की क्या परवाह थी। गर्मियों में यदि जंजीर से बँधे-बँधे धूप आ जाती, तो उसे कोई छाया में न करता। हार कर मैंने एक छोटा-सा नौकर रख लिया; पर फिर भी बात वही-की-वही रही। घर की झाड़ू-बुहारी और काम-काज में कुत्ते-जैसे अनावश्यक जन्तु की देख-भाल के लिए उसे कौन समय दे। दिनों ही में सूख गया। मुझे उसकी हालत देख कर बड़ा दुःख होता। सोचता, यदि उस समय साहब को दे देता, तो कितना अच्छा होता, मजे से गद्दों में आराम करता, मोटरों में घूमता और अच्छे-से-अच्छा खाना खाता। जब भी कभी मैं उसके पास जाता और वह अपनी

दर्दभरी आँखों से मेरी ओर ताक कर दुम हिलाता, तो मेरे हृदय में इक टीस-सी उठती। हार कर एक दिन मैंने उसके गले से जंजीर खोल दी और उसे आजाद कर दिया।"

× × ×

"जिस प्रकार चिरकाल का बन्दी पक्षी पिंजरे की खिड़की खुल जाने पर भी नहीं उड़ता, उसी प्रकार पहले-पहल तो मोती स्वतन्त्रता पाकर भी परतन्त्र बना रहा। कई दिन तक वह मकान से बाहर न निकला और बाहर भी निकला, तो मकानसे परे नहीं गया। भूख मिटाने के लिए भी वह इधर-उधर नहीं भटका; कोई खाने लगता, तो दुम हिलाता हुआ वह उसके पास आकर बैठ जाता; पर धीरे-धीरे आजादी से वह अभ्यस्त होने लगा। और प्रतिबन्धों में जकड़ा हुआ युवक आज़ादी पाने पर जैसे नहीं सोच सकता कि कौन-सा मार्ग उसके लिए बुरा है और कौन-सा अच्छा, संगति का बहाव जिधर ले जाता है, उधर ही वह बह जाता है, इसी प्रकार मोती भी मोहल्ले-टोले के कुत्तों के साथ इधर-उधर फिरने लगा। हलवाइयों की दूकानों के दोने और गन्दगी के ढेरों से भी अब उसे इतना परहेज़ न रहा; पर इसके बावजूद दोपहर और रात के समय वह घर पर ही काटता। मेरी पत्नी उससे तंग आ गई। दिन-रात उसे कहीं बाहर भिजवा देने या गोली मरवा देने का वह शोर मचाने लगी। उसके तंग आने का एक कारण यह भी था कि उन्हीं दिनों उसे ख़ारिश की बीमारी हो गई। दाँतों और नाखूनों से खरोच-खरोच कर उसने खून चला दिया। दिन को हम तो घर में रहते न थे, मोती अपना ख़ारिश वाला शरीर लिये गन्दे-मन्दे पैरों से आता और कमरे ख़राब कर जाता। पत्नी की दाँता-किट

किट से तंग आकर एक दिन मैंने मोती को पकड़ लिया और उसके घावों को फिनाइल से धो दिया। तब वह ऐसा भागा कि दो दिन उसने सूरत न दिखाई। मालूम हुआ, जब अधिक रात होने पर घर के लोग सो जाते, तो वह दरवाज़े के सामने आकर पड़ रहता है। मैंने उसे मुक्त किया था कि वह कहीं चला जायगा, तो मुझे सुखकी साँस मिलेगी; पर उसकी दशा देख कर तो और भी दुःख होता। इस बीच में एक दिन जब मैं घर आया, तो पत्नी ने रुआसी-सी होकर कहा—मुझे इस बैरी से छुटकारा न दिलाओगे?

मैंने पूछा—बात क्या हुई?

वह बोली—बात क्या होती। तुम्हारे उसी लाड़ले ने शीला के काट खाया है। सारा दिन वह, उसकी सास और ननदें गालियाँ देती रही हैं। आपको सुननी हों तो सुनें, मैं तो इस कुत्ते के पीछे अपने बच्चों की गालियाँ नही सुन सकती। तरसा-तरसाकर तो परमात्मा ने दो बच्चे दिए हैं।

मैंने बज़ारी से कहा—तो मैं क्या कर सकता हूँ? ये मोहल्ले के लड़के भी तो कम शैतान नहीं, बैठे-बैठाए को छेड़ देते हैं।

पत्नी ने कहा—बच्चे तो ऐसे ही होते हैं, तो क्या इस मुँहजले कुत्ते के पीछे मोहल्ले से बच्चों को निकाल दोगे?

मैंने चीखकर कहा—तो क्या करूँ, ज़हर दे दूँ।

पत्नी ने जैसे मेरी व्यथा को देखा ही नहीं, सहज भाव से बोली—आप ज़हर क्यों दें, किसी भङ्गी को एक दो रुपये दे दें, वह उसे ज़हर दे देगा। कुत्ते की मौत का पाप आप अपने सिर क्यों लें?

मैं निर्निमेष उसकी ओर देखता रह गया। घृणा और ग्लानि से मेरा जी भर आया। खाना भी मैं उस दिन न खा सका। जिसे अपने हाथों से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, उसे अब ज़हर दिलाना होगा!"

× × ×

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर पण्डितजी ने कहा—"इसके बाद यह प्रसंग कई दिन तक नहीं उठा; पर एक दिन अचानक रात को मोहल्ले में शोर मच गया। मोती ने फिर किसी को काट लिया। उसकी न-जाने कैसी आदत थी कि रात को जब भी कोई उसके पास से गुज़रता, तो पहले तो वह चुप रहता; पर फिर अचानक ही उस पर झपट पड़ता। मोहल्ले के लड़कों को तो वह पास से गुज़रने तक नहीं देता था। शायद उनकी ईंटें खा-खाकर उसने आत्म-रक्षा का निश्चय कर लिया था। अब जब उसने हमारे पड़ौसी के लड़के को काट लिया तो मेरी शान्ति का भी बाँध टूट गया। नित नई लड़ाई कौन करे, कौन गालियाँ सुने? मैंने मोती को पकड़ लिया और जंज़ीर से बाँधकर मोहल्ले के भङ्गी को सौंप आया। दो रुपये मैंने उसे दिए और कहा कि इसे ज़हर दे दो।

भङ्गी ने मुझे विश्वास दिलाया कि वह उसे 'गोली' दे देगा और कि मैं चिन्ता न करूँ। चिन्ता न करने का मैंने फ़ैसला भी कर लिया, सोच लिया कि चलो झगड़ा खत्म हुआ; पर फिर भी न-जाने क्यों दिल भर-भर आता था। खाने बैठा, पर दो कौर भी न निगल सका, और रात को नींद भी कुछ मुझे ठीक नहीं आई।

तीन-चार दिन गुज़र गए। सुबह को आप जानते हैं, जैसी

मेरी आदत है, आर्य-समाज के ग्राउंड की ओर सैर को निकल जाता हूँ। उस दिन भी चुपचाप मैं अपने ख़याल में आ रहा था कि सड़क की ओर पड़े हुए एक ढेर से एक मरियल-सा हड्डियों का ढाँचा-सा कुत्ता मेरे पीछे चलने लगा। एक-दो बार मैंने दुत्कारा, पर गया वह नहीं। फिर मैंने पीछे मुड़कर जो उसे भगाने के लिए छड़ी उठाई, तो ठिठक कर रह गया। यह तो मोती था! उसकी दशा देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। चुपचाप मैं फिर चलने लगा। रास्ते में भङ्गी का घर आता था। मैंने उसे बुलाया, डाँटा, मालूम हुआ कि विष देने के बदले उसने उसे एक खूँटे से बाँध कर लाठी से खूब पीटा था और मार कर ढेर पर छोड़ आया था। उस वक्त यदि मेरे हाथ में पिस्तौल होती और आदमी का मारना अपराध न होता, तो मैं उस जालिम को अवश्य गोली मार देता। पर अत्यन्त क्रोध के समय भी किसी ने मुझे ऊँचा तक बोलते नहीं देखा। खून के घूँट भरकर मैं चुपचाप चला आया। घर पहुँचा तो मोती को देखकर पत्नी ने माथा ठोंक लिया और उसे और भङ्गी को जाने कितनी गालियाँ सुनाईं। मैंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया, दूध और डबल रोटी मँगाई और उसे खिलाने लगा। पूँछ हिलाता हुआ वह खाता जाता था और कभी कृतज्ञ-आँखों से मुझे देख भी लेता था।

इस प्रकार उसे दूध डबल रोटी खिलाते देखकर पत्नी ने क्रोध से कहा—अब क्या फिर इसे घर रखने का इरादा है?

मैंने कहा—मुझ से तो इतनी निर्दयता हो नहीं सकती।

पत्नी चिल्लाकर नौकर से बोली—जा तो मुंडू, ज़रा उस बदमाश भङ्गी को बुला ला।

मुंडू भागा-भागा गया और भङ्गी को बुला लाया। असंख्य तो उसे गालियाँ श्रीमती जी ने सुनाईं और धोखा देने के लिए उसे खूब डाँटा और फिर धमकी भी दी कि उस पर मामला चलाया जायगा। अन्त में उसके अनुनय-विनय करने पर उन्होंने आठ आने भङ्गी की ओर फेंक दिए और कहा कि जाकर कुत्ते को ज़हर दे दे, ताकि वह इतने कष्ट में न रहे।

मैं बैठक में जा बैठा था। भरे गले से चीख़कर मैंने कहा—इस निर्दयी चाण्डाल के हाथ क्यों सौंपती हो?

पत्नी मेरे पास आकर कर्कश स्वर में बोली—तो ब्राह्मण होकर स्वयं कुत्ते की हत्या करोगे? और यह कहते हुए वह चली गईं। मैंने सुना आँगन से वह कह रही हैं—जा, ले जा इसे, अगर अब की तूने धोखा किया, तो जेल भिजवा देंगे।

× × × ×

पण्डित जी कुछ क्षण के लिए चुप हो गए। मैंने देखा उनका गला भर आया है। उस गम्भीर और शान्त व्यक्ति के हृदय में कितनी व्यथा थी, इसका मैंने कुछ-कुछ अनुमान किया।

पण्डित जी फिर बोले—"जानते हो, उस ज़ालिम भङ्गी ने क्या किया? गालियों और धमकियों की आग में जलता वह घर पहुँचा। ग़रीब मोती को उसने फिर एक खूँटे-से बाँध दिया और मार-मारकर अपनी ओर से उसके जीवन का अन्त करके उसे कहीं फेंक आया।

चार-पाँच दिन बाद मैं अपनी दूकान में अन्यमनस्क-सा बैठा था। कई दिन से दूकान में मन्दा था। मोती जिस दिन से गया, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ, जैसे दूकान की बिक्री ही उठ गई। सारा दिन बैठे-बैठे ग्राहक की बाट जोहने पर उसकी सूरत भी

दिखाई न देती। शाम का समय था, और मेरा जी चाह रहा था कि जल्दी दूकान बढ़ाकर घर चला जाऊँ, कि क्या देखता हूँ कि जमीन सूँघता हुआ, काँपता-काँपता मोती का कंकाल-सा दूकान की सीढ़ी पर आकर खड़ा हो गया। एक निमिष के लिए मुझे रोमांच हो आया। आँखें फाड़कर मैंने देखा, मोती ही तो था।

चीखकर मैंने पुकारा—मोती !

उसने केवल पूँछ हिलाई और जमीन को सूँघा; पर बढ़ा नहीं—वैसे ही अगले पाँव सीढ़ी पर टिकाए, दूकान के तख्ते को सूँघता हुआ काँपता रहा।

मैंने फिर पुकारा—मोती !

इस बार वह काँपता-काँपता ऊपर चढ़ आया, और ! फ़र्श सूँघता सूँघता मेरे पास से निकल कर दूसरे कमरे में चला गया।

एक अज्ञात आशंका से मेरा मन धड़क उठा। उठकर मैं मोती के पास चला गया। जाकर देखा, मेरा सन्देह ठीक था—मोती अन्धा हो गया था। उसकी आँखें खून की तरह लाल थीं और पुतलियाँ अपनी जगह से फिर गई थीं। निश्चय करने के लिए मैंने बड़े लड़के जयराज को मीठा बन्न लाने के लिए कहा। वह भागकर बन्न ले आया और मोती की ओर हाथ बढ़ाकर बोला—लो।

मोती दूसरी ही जगह मुँह मारने लगा। जयराज ने बन्न फेंक दिया और सूँघकर एक ही बार में वह उसे निगल गया। जाने कितने दिनों का भूखा था !

मेरी आँखों से आँसू निकल आए। जाने किस तरह वह जीवित बच गया। किस प्रकार भूखा, अन्धा, मृतप्राय वह केवल

पशुज्ञान द्वारा सूँघ-सूँघ कर दूकान पर आ पहुँचा।"

× × ×

मैंने देखा, पण्डित जी की आँखें भर आईं, अवरुद्ध कण्ठ से बोले—"मैं मोती को घर ले आया, और पत्नी से मैंने कह दिया कि यदि एक शब्द भी इसके सम्बन्ध में किसी ने कहा, किसी ने उसे जरा-सा भी कष्ट दिया, तो मैं घर छोड़ कर चला जाऊँगा।"

उसी समय एक सूखा-सा मरा-मरा कुत्ता जमीन सूँघता सूँघता आया और पंडित जी के पास बैठ कर दुम हिलाने लगा। उसकी गरदन पर प्यार से हाथ फेरते हुए पंडित जी ने अपनी आँखों को पोंछ लिया।

नन्हा

उन्होंने कहा—"ताँगा आ गया है, जल्दी चलो, समय नहीं"। और यह कहकर वे सामान उठाकर नीचे ले जाने लगे।

अपनी क्षीण और जर्जर काया को लेकर मैं चुपचाप उठी। अन्दर बिस्तर पर मेरा नन्हा-फूल सुख की नींद सो रहा था। आँखों की पंखुड़ियाँ उसकी बन्द थीं, नन्हीं-नन्ही लटें मस्तक पर बिखर रही थीं। उसके बालों पर हाथ फेरते हुए धीरे-धीरे मैंने उसके गर्म-गर्म ओठों को चूम लिया। बच्चा एक बार चौंका फिर करवट बदल कर सो गया। कितनी बार उन बिखरे रूखे बालों पर प्यार का हाथ फेरा था, कितनी बार उन कोमल कपोलों को अनायास अपने ओठों से लगाकर भींच लिया था; लेकिन कभी कण्ठ यों आर्द्र न हो आया था, आँखें इस तरह न भर आई थीं। सोचने लगी—कौन जाने फिर यह नन्हीं-मुन्नी सूरत देखने को भी मिलेगी या नहीं; आकर फिर उसे पा भी सकूँगी या नहीं, जी भरकर प्यार भी कर सकूँगी या

नहीं—एक बार गोद में लेकर उसे चूम लेने को जी विह्वल हो उठा। मैं झुकी। तभी पीछे से आकर उन्होंने कहा—"जाग जायगा।" फिर मेरी सास की ओर देखकर बोले—"माँ जी, अब नन्हा आपके हवाले है।"

मैंने अपनी गीली आँखों से उनकी ओर केवल देखकर यही प्रार्थना दुहरा दी। ज़बान से भी कुछ कहना चाहती थी पर गले ने साथ न दिया। हाँ, मस्तक उनके चरणों पर झुक गया।

सास बोलीं—"परमात्मा रक्षा करेगा, बेटी। मैं तो प्रार्थना करती हूँ—तुम शीघ्र स्वस्थ हो कर आओ और अपने लाल को सँभालो।"

चुपचाप मैं सीढ़ियाँ उतरने लगी। सास ताँगे तक आईं; क्षणिक आवेग के वस मैं उन से लिपट गई। तभी जैसे मुझे अपनी स्वर्गीय माँ की याद हो आई। मैंने सास को और भी ज़ोर से अपनी बाहों में भींच लिया और सिसकियाँ बरबस मेरे ओठों से निकलने लगीं।

आँचल से आँखें पोंछ कर सास ने मुझे ताँगे में बैठने को कहा—और दूसरे क्षण घोड़े की टापों से रात की निस्तब्धता भङ्ग हो उठी।

× × ×

निठुर, निर्मम और ठण्डी सड़क! सोये हुए या किसी की याद में खोये हुए मलिन मकान और किसी अज्ञात अमङ्गल की भाँति संसार पर छा जाने वाली सर्दी। उन्होंने बिना कुछ कहे शाल को और भी अच्छी तरह मेरे गिर्द लपेट दिया।

मैं जैसे आँखें फाड़ कर उन विदा होते हुए दृश्यों को देख रही थी। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। नीरवता, नींद और अन्धकार—तीनों से मिलकर यह रात की दुनिया बसी थी। सड़क के दाईं ओर फुटपाथ पर सड़ा-गला लिहाफ़ ओढ़े कोई दुनिया से ठुकराया भिखारी सो रहा था। मेरे हृदय में उस अनाथ के लिये हमदर्दी का समुद्र उमड़ आया और फिर एक बे-माँ के बच्चे का चित्र आँखों के आगे खिँच गया।—फूल-से गाल मुर्झा गये हैं, ओठों पर पपड़ियाँ जम गई हैं; आँखें हैं कि उल्लास की क़ब्रें बनी हुई हैं—अधीर-सी होकर मैंने कहा—"ताँगा रोकना।"

"क्या बात है?"—उन्हों ने पूछा।

"एक फ़कीर इतनी सर्दी में फुटपाथ पर सोया पड़ा है।"

"कहाँ?"

किन्तु ताँगा इतने में बहुत दूर निकल आया था। मैंने दूर तक नज़र दौड़ाई। सामने मकान के ऊपर से अस्ताचल को जाता हुआ चाँद झाँक रहा था—उदास और क्लांत। जैसे अपनी परिचित नगरी को छोड़ते हुए उसे दुःख हो रहा था और उस की फीकी रोशनी में वह मन्द-भाग्य भिखारी एक काला धब्बा-सा बन कर रह गया था।

बाईं ओर एक मकान से बच्चे के रोने की आवाज़ आई और किसी माँ ने थके हुए उनींदे स्वर से कहा—"सो जा मेरे लाल!" बच्चा जाने क्यों, और भी रो उठा। तब किसी बुढ़िया की कर्कश आवाज़ सुनाई दी—"सो भी जा कमबख्त! सारी नींद हराम कर दी।"

मेरा कलेजा उछल पड़ने को हो गया। घर का नक्शा

आँखों के आगे खिंच गया—मेरा लाल रो रहा है, 'माँ-माँ' कह कर चिल्ला रहा है और माँ उसे झिड़क कर सुलाने का प्रयास कर रही है। वापस जाने के लिए मैं बेचैन हो उठी, मैंने कहना चाहा ताँगा रोक दो।

ताँगा रुक गया। स्टेशन आ गया था और प्लेटफ़ार्म पर खड़ी हुई गाड़ी का इञ्जन 'शूँ-शूँ' कर रहा था।

मेरे पति ने कुली को आवाज़ दी और मुझे बाज़ू थाम कर उतारते हुए कहा—"शील, इधर कुली ट्रङ्क रख देता है। तुम उस पर बैठो और बाकी सामान ध्यान से उतरवा लेना। मैं इतने में भाग कर टिकट ले आऊँ, समय नहीं है।"

मैं कहना चाहती थी, कि मैं वापस जाना चाहती हूँ आज नहीं कल चलेंगे; लेकिन कहती किसे, वे तो टिकट लेने चले और कुलियों ने सामान उतार कर रखना शुरू किया।

"देख लेना बहू जी, कोई और चीज़ तो नहीं रह गई" मैं जैसे स्वप्न से जागी, तभी वे भी आ गये। सामान को गिन कर उन्हों ने ताँगे वाले को पैसे दिये और कुछ देर बाद गाड़ी हमें अपनी गोद में बिठाये लिये जा रही थी—मौत और इस गाड़ी में शायद कोई बहुत अन्तर नहीं। यदि है तो इतना ही कि मौत चुपचाप आती है और गाड़ी शोर मचाती हुई। नहीं तो अथक निर्मम और भावशून्य यह भी कम नहीं। सहस्रों यात्री इस ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा दिये, कभी किसी से प्यार नहीं पाला, कभी किसी के वियोग में दो आँसू नहीं बहाये, मौत की भाँति निर्मम हो कर लिये जाती रही है यह उन को। इसे क्या मालूम कि यह जो उस की गोद में बैठी जा रही है, शायद अपनी अन्तिम यात्रा पर है। यहाँ के डाक्टरों ने उस के

जीवन से निराशा प्रकट की है, शायद फिर कभी उस की गोद में बैठ सकेगी या नहीं, पर इसे क्या·········

दूर वृक्षों के सिरों पर चाँद चमक रहा था। कान्ति उस की और भी फीकी हो गई थी। सहसा एक नन्ही-सी सूरत ने चाँद में झाँका और किसी ने पुकारा।

'माँ!'

'माँ!'

मैंने उनकी ओर देखा—सामने की सीट पर चुप विचार में मग्न बैठे थे।

मैंने कहा—"आपने यों ही इतनी जल्दी की। एक दिन और ठहर जाते तो क्या था?"

उन्होंने स्थिर आँखों से मेरी ओर देखा और फिर उठकर वह मेरे पास आ बैठे।

मेरे सिर को अपने विशाल सीने से लगाते हुए उन्होंने कहा—"शील, तुम इतनी अधीर क्यों हो रही हो?"

मेरे आँसू शायद उनकी इसी बात की प्रतीक्षा कर रहे थे।

× × ×

क़हक़हा लगाने की कोशिश करते हुए उन्होंने कहा—"शील, यदि तुम इस तरह कुढ़ो-दुखोगी तो आराम न आयगा।"

लेकिन मैं नहीं हँसी, मैंने कहा—"मैं मिन्नत करती हूँ, तुम मुझे नन्हें को लाकर दिखा दो।"

वह चुप मेरी ओर देखते रहे फिर उन्होंने कहा—"तुम दूसरों की कठिनाई नही समझती, बच्चे को यहाँ लाना इतना सुगम नही जितना तुम समझती हो। बच्चे को लाना चाहूँगा, तो माँ को भी उसके साथ आना पड़ेगा और तुम्हें मालूम नही

माँ आज कल एक दिन के लिये भी घर नही छोड़ सकतीं, हरिकृष्ण के इम्तिहान हो रहे हैं। और फिर सुमित्रा को भी घर में अकेली नही छोड़ा जा सकता, अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ?"

यह कहकर वे चुप हो गये और मैंने आँचल में अपना मुँह छिपा लिया। आज दो महीने से मैं अस्पताल में पड़ी थी। रह-रह कर मुझे नन्हें की याद सताती थी। केवल नजर भरकर देखना मात्र चाहती थी उसे, अपने पास रखना तो न चाहती थी; पर मेरी इतनी-सी इच्छा भी पूरी न हो रही थी।

बाहर सड़क पर मोटर पों-पों करती निकल गई और मन्थर गति से चलने वाले किसी ताँगे के पहियों की आवाज आने लगी।

मैंने आँखों को पोंछ कर दूर वार्ड के अन्तिम कोने में पड़ी हुई कामना की ओर देखा। वह दो महीने से अस्पताल में पड़ी थी, एक बच्ची शायद घर में तब से ही उसकी राह देख रही थी और कामना शायद जीवन से निराश थी; शायद जानती थी कि उसकी बच्ची अपनी माँ को फिर कभी न देख सकेगी और तभी कभी-कभी छटपटा कर अपने पति से विनीत स्वर में वह कह उठा करती थी—"मुझे मुन्नी को दिखा दो।"

कम्बल ओढ़े चुपचाप वह पड़ी थी—कौन जाने वह सोई थी या जाग रही थी। और यदि जाग भी रही थी तो कौन जाने कि वह जागृतावस्था में ही अपनी बच्ची का प्यार न ले रही थी?

दो महीने पहले की एक घटना मेरी आँखों के सामने फिर गई, एक बेपनाह चीख़ की भाँति रात को चीरती हुई गाड़ी लाहौर पहुँची थी और अस्पताल में दाख़िल होने से पहले हम

उनके एक मित्र के यहाँ एक दिन के लिए ठहरे थे। अनारकली के समीप ही गणपत रोड पर उनके मित्र का मकान था। जिस कमरे में मुझे ठहराया गया था, वह काफी खुला और रोशन था। मैं गाड़ी से उतर कर ताँगों के अड्डे तक आते-आते ही नढाल हो गई थी। यद्यपि कुछ भी खाने-पीने को मन न चाहता था, फिर भी उनके अनुरोध से दूध के दो चार घूँट भरकर बिस्तर पर लेट गई थी। मेरे आराम का प्रबन्ध करके वे डाक्टरों से परामर्श करने बाहर चले गये थे और मैं खिड़की के बाहर खुले नीले आकाश को ताकती लेटी रही थी। बाहर से कुछ विचित्र प्रकार का मिला-जुला शोर कानों में आ रहा था—कभी मोटर की घर्र-घर्र का, कभी पों-पों का, कभी ताँगों की खड़खड़ाहट का, कभी ताँगे वालों की गालियों का और कभी इन सब का इकट्ठा; किन्तु इन सब चिल्ल-पों और इस सब कोलाहल में कभी-कभी जैसे कोई धीरे से मेरे कानों में आकर आवाज़ देता था—"माँ!" और मैं सिहर जाती थी।

दुपहर को घर की मालकिन—उनके मित्र की धर्मपत्नी—मेरे पास आ बैठीं। बेचारी बड़ी अच्छी थीं। मुझ से मेरी बीमारी के सम्बन्ध में पूछने लगीं।

मैंने कहा—"पता नहीं चलता क्या बीमारी है? ज्वर रहता है, और घुली जा रही हूँ। जाने क्या रोग है? मालूम नहीं, जीती भी लौटूँगी या नहीं।"

वह मुस्कुराई, आज भी वह मुस्कुराहट मेरी आँखों के सामने नाच जाया करती है, बोली—"आप घबरायें नहीं। ज्वर की क्या बात है, एक तरह का हो तो कोई जाने! मेरी ननद को साल भर ज्वर चढ़ता रहा। डाक्टरों ने तो डरा ही

दिया था; पर परमात्मा ने भला किया। जिगर का बुखार था। डेढ़ वर्ष बाद आराम आ गया और अब तो वह कई बच्चों की माँ भी हैं। परमात्मा ने चाहा तो आप भी शीघ्र स्वस्थ हो जायँगी।

मैंने विषाद से हँसकर कहा—"ईश्वर करे आप जो कहती हैं वही हो।" तभी एक छोटा-सा सुन्दर बालक 'माँ-माँ' करता आया और उनके गले से लिपट गया।

दूसरे दिन मुझे अस्पताल में दाखिल करा दिया गया। मैंने सुख की साँस ली। यदि उनके मित्र के यहाँ मुझे कुछ दिन और रहना पड़ता तो जाने मेरी क्या दशा होती। जब भी वह गोल-मटोल सुन्दर भट्टा-सी आँखों वाला बालक आता, मेरा हृदय उसे गोद में लेकर प्यार करने के लिए तड़प उठता।

उज्ज्वल, स्वच्छ और खुला कमरा, शीशों की भाँति चमकता हुआ फ़र्श, श्वेत पालिश से दमकती हुई मेज-कुर्सियाँ— मुझे अस्पताल का वातावरण बुरा नहीं लगा। इस उज्ज्वल और पवित्रता के बावजूद अस्पताल में स्निग्धता और ममत्व का जो अभाव-सा होता है, तब उस पर ध्यान न देकर मैं नन्हें बच्चे की दुनिया से दूर जैसे पूर्ण शक्ति पाकर हलकी हुई थी। पर अब तो दो महीने इसी निर्ममता में रहकर ऊब उठी। मैं चाहती थी—अपने घर का आँगन, उसमें अपने चहकते हुए नन्हें का शोर, उसकी किलकारियाँ, प्यार, रुदन और झिड़कियों का संसार···

तभी कामना, न जाने कब, धीरे से उठकर दीवार का सहारा लिये मेरे पास आई और उसने मेरी भरी हुई आँखों के सामने एक फ़ोटो रख दिया—

'शीला, यह मेरी मुन्नी की तस्वीर है।'

मैंने उसकी ओर देखा, उसके ज़र्द-पीले चेहरे पर एक स्वर्गिक उल्लास खेल रहा था।

'सुन्दर है'—मेरे भरे हुए कण्ठ से इतना ही निकला, जब वह चली गई तो मैंने आर्द्र-नयनों से उनकी ओर देखते हुए अत्यन्त विनीत स्वर में कहा—"एक बात मानोगे ?"

"कहो ?"

"उसको नही ला सकते, तो उसका एक फ़ोटो ही ला दो।"

एक निमिष के लिए उनका मुख मलिन हो गया, फिर हँस कर उन्होंने कहा—"अच्छा ला दूँगा।"

मैंने पूछा—"चेहरा क्यों उदास कर लिया ?"

वे हँसे, बोले—"मैं सोचता हूँ इससे तुम स्वस्थ न हो सकोगी। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो रहा है, दो एक महीनें तक घर ही तो जाओगी, यहाँ बैठी उसके फ़ोटो को लेकर रोती रहा करोगी।"

मैंने कहा—"मैं कभी न रोऊँगी।"

सन्ध्या का समय था, डूबते हुए सूर्य की पीली कान्ति सड़क के वृक्षों से छनकर खिड़की से अन्दर आ रही थी। खिड़की की जाली के पास मैं कब से बैठी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। नन्हें के कई चित्र मेरी आँखों के सामने फिर गये थे; कल्पना-ही-कल्पना में मैंने उससे बातें कीं, उसे प्यार किया, चूमा और गले से लगाया। साढ़े पाँच बजने को आये; खिड़की से लगे-लगे मेरे गाल पर जाली के निशान बन गए—जाली में निर्निमेष रास्ता तकते-तकते मेरी आँखें दुखने लगीं, दूसरे रोगियों को देखने जो नातेदार आये थे वे जाने लगे; लेकिन उनका कहीं पता न था।

आज उन्होंने नन्हें का फ़ोटो साथ लाने को कहा था। सुबह से आज मैं शाम की प्रतीक्षा कर रही थी; मिनट गिन-गिन कर दिन काटा था। चार बजे तो मेरा दिल ख़ुशी से धड़कने लगा था, पर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता, मेरा उल्लास भी हल्के-हल्के श्वेत बादलों की भाँति दुख के आकाश में विलीन होता जाता। और अब—अब तो जी चाह रहा था कि ज़ोर से चीख़ मार कर रो पड़ूँ, यह जाली तार तार कर दूँ और बाहर सड़क पर पागलों की नाईं भाग जाऊँ।···

तभी कामना की मौसी ने आवाज़ दी—"कहो शीला, क्या हाल है?"

मैंने उनकी ओर देखा; पर कुछ कह न सकी।

'कहो तुम्हारा नन्हा तो अच्छा है?'

एक क्षण के लिए मेरा दिल धड़क उठा, घबरा कर मैंने पूछा—"क्यों उसे क्या हुआ था?"

कामना की मौसी हमारे नगर ही में ब्याही हुई थीं। मैं तो उन्हें न जानती थी, पर वे हमारे सब घरवालों से परिचित थीं। कहने लगीं—"सुना था कई दिनों से बीमार है।"

मैंने और भी घबराकर कहा—"नहीं तो, मुझे तो उन्होंने बताया तक नहीं। अभी तो उस दिन वे मुझे मिलने आये थे; कहते थे—"ख़ूब हृष्ट-पुष्ट है और अब तो बैठना भी सीख गया है।"

यह कहकर मैंने उत्सुकता की निगाहें कामना की मौसी के चेहरे पर जमा दीं।

लेकिन मौसी ने कुछ भी न कहा। तनिक गम्भीर होकर वह बोलीं—"मैं कई दिन से मोहल्ले में गई भी नहीं, अब अच्छा

हो गया होगा। फिर ज़रा मुसकराने की कोशिश करते हुए उन्होंने पूछा—"कहो, अब तुम्हारा क्या हाल है ?"

मैंने कहा—"आगे से अच्छी हूँ;" और इससे पहले कि मैं नन्हें के सम्बन्ध में उनसे कुछ पूछती। मौसी 'नमस्ते' करके चली गइ। खिड़की की जाली से बाहर की ओर देखा तो अँधेरा छा रहा था। मैं निराश हो गई। और बीस मिनट तक यदि वे न आये तो अस्पताल का फाटक बन्द हो जायगा। फिर अगले सप्ताह तक उनके आने की प्रतीक्षा करनी होगी। पहाड़-से सात दिन कैसे बीतेंगे ? मैंने दीर्घ निश्वास छोड़ा; मेरा जी फिर रोने को हो पड़ा। तभी देखा, फाटक पर वे तेज़-तेज़ जैसे भागते हुए चले आ रहे हैं; मैं बिस्तर पर लेट गई और अनायास ही अपनी बह उठनेवाली आँखों को आँचल से ढक किया।

वे आकर मेरे सिरहाने बैठ गये।

'शील !—शील !—शील !'

और बार-बार मेरा हाथ उन्होंने मेरी आँखों से उठाया, न जाने कहाँ से इतने आँसू निकले आ रहे थे। मैं रोना न चाहती थी; फिर भी रोए जा रही थी।

आखिर उन्होंने इस देरी की सफ़ाई देनी शुरू की—नन्हें की फ़ोटो ही के कारण पहली गाड़ी मिस कर गया; क्या करता, फ़ोटोग्राफर ने अभी तैयार ही न किया था। मैं जाकर सिर पर सवार हुआ तो मुश्किल से तैयार कर दी, पर फिर भी गाड़ी छूट चुकी थी। मोटर में आया हूँ। और मेरे आँसू स्वयं थम गये। एक बार आँचल से आँखें पोंछकर मैं उठ बैठी—"खिंचवा लाये फ़ोटो, दिखाओ तो।"

उन्होंने हँसने का प्रयास करते हुए पूछा—"रो क्यों

रही थीं ?"

मैंने कहा—"फोटो दिखायें आप !" और मैंने उनके हाथ से फोटो छीन लिया। एक मूढ़ा उल्टा करके रखा था और उसमें बिठाकर उसका चित्र लिया गया था। मुहब्बत के जोश में मैंने उसे चूम लिया और फिर सीने से लगाकर लेट गई। उस समय ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं बहुत हल्की हो गई हूँ, जैसे मीलों लम्बी यात्रा करने के बाद आराम से मंजिल पर पहुँच गई हूँ।

आज अस्पताल में मेरा अन्तिम दिन था। सुबह से ही मेरी तबीयत भारी-भारी हो रही थी। कुछ विचित्र प्रकार की उदासी स्वाभाविक उल्लास के साथ मेरे रोम-रोम में छाई जाती थी। सराय में भी चार दिन रहो तो कमरे से प्रेम हो जाता है, और विदा होते समय मनुष्य दीवारों पर ही एक हसरत भरी नज़र डाल लेता है। फिर अस्पताल में तो मैंने अपनी बीमारी के चार दिन नहीं चार महीने बिताये थे, फिर वे बीमार स्त्रियाँ थीं, जिन से इन बीमारी के दिनों में प्यार-सा, बहनापा-सा हो गया था। दिन भर मैं सबसे विदा लेती रही, कामना प्रातः ही से बेहोश थी, उसकी बच्ची का चित्र उसके सीने पर पड़ा था। इन अन्तिम दिनों में उसका सारा प्यार, सारा अनुराग, समस्त आकांक्षाएँ, अपनी बच्ची में केन्द्रित हो गई थी। जब वह होश में होती तो उसके विषय में सोचती। पुरुषों का क्या है, आज एक स्त्री की मृत्यु हुई, कल दूसरी आ जायगी—शायद पहली से अच्छी ही; पर बच्चों को उनकी माँ कभी नहीं मिलती—यही बात वह मुझ से कहा करती थी। और शायद उसका कथन सत्य था। बेहोश, अपनी बच्ची की तस्वीर को सीने से लगाये, वह

अपने बिस्तर पर पड़ी थी, और मैं परमात्मा को धन्यवाद दे रही थी कि उसने मेरे बच्चे को बे-माँ का होने से बचा दिया। अपनी मृत्यु के बाद उसकी दशा की कल्पनामात्र से मेरा हृदय काँप जाता। मैं दिल से चाहती थी कि कामना को होश आ जाय, तो मैं उससे दो बातें करके विदा ले लूँ; पर उसे होश न आया इधर वे मुझे लेने आ गये।

गर्मियाँ अभी पूरी तरह शुरू न हुई थीं; पर वृक्षों की छाया प्यारी लगने लगी थी। मीठी मादक बयार चल रही थी। अस्पताल से बाहर आकर अपने चारों ओर मैंने नजर डाली। एक मटियाले रंग का कबूतर शीशम के पत्तों में छिपा 'गटरगूँ' कर रहा था और अस्पताल की दीवार पर दो फफोले फुदक रहे थे। मैंने खुशी की फरेरी ली। सब कुछ नया-सा लग रहा था और मैं महसूस करती थी जैसी दूसरी दुनिया से लौट आई हूँ। लाहौर छोड़ने से पहले हम उनके मित्र के यहाँ भी गये। ओठों पर वही मुसकान लिये उनकी पत्नी ने मेरा स्वागत किया। अनुरोध करने लगी कि दो चार दिन लाहौर ठहर कर जाऊँ; इतनी चीजें यहाँ देखने की हैं। उन्होंने भी कहा—"जब किसी सबब से आई हो, तो एक दिन रहकर कुछ देख-दिखा जाओ, फिर कब आना होता है ?"—पर मैं न मानी। कोई दूसरा अवसर होता तो शायद मैं उन्हें दो-चार दिन क्या एक-दो सप्ताह लाहौर रहने के लिए विवश कर देती; पर मैं तो उड़कर घर पहुँच जाना चाहती थी। उनके मित्र और पत्नी के बहुत जोर देने पर खाना हमने वहीं खाया। बड़े प्रेम से उन्होंने तैयार किया था; पर मुझे कुछ आनन्द न आया। जल्द-जल्द निबटकर मैं तैयार हो गई। घर की मालकिन से गले मिली और फिर आने का और उन्हें काफी

दिन तक तङ्ग करने का वादा करके चल पड़ी। अनारकली के सिरे पर बिसातियों की दुकानें देखकर मुझे नन्हें के लिए खिलौने लेने का ख़याल आया।

उन्होंने कहा—"गाड़ी रह जाएगी। वहाँ क्या कम खिलौने मिलते हैं?"—पर जितनी देर में वह ताँगा करते, मैंने ख़रीद लिये।

वे मेरे समीप आकर हँसे। बोले! "सभी झोली में डाल लोगी क्या? चलो ताँगा आ गया है।" और पैसे दुकानदार को देकर मैं उसी तरह झोली में खिलौने लिये ताँगे में जा बैठी। स्टेशन पर पहुँचे तो गाड़ी तैयार थी, टिकट लेकर दौड़े, बैठे कि चल दी।

प्रायः ऐसा भी होता है कि भावातिरेक के कारण बातें करना असम्भव होता है। गाड़ी चली जा रही थी और हम दोनों चुप बैठे थे। उनके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकती; पर मैं बहुत कुछ सोच रही थी। बच्चे के प्यार की क़ीमत तो मुझे अस्पताल ही जाकर मालूम हुई—जीवन की समस्त ज्योति जब मौत की गहरी खाई की ओर बढ़ने लगती है तो एक वही मुन्नी सी किरण साथ-साथ चली आती है। गाड़ी के उस डिब्बे में बैठे कामना का चित्र मेरी आँखों के सामने खिंच गया और मन ही मन उसकी बदनसीब बच्ची के लिये प्रार्थना करके मैंने अपने नन्हें के पालन-पोषण के सिलसिले में कई स्कीमें बना डालीं।

गाड़ी के हिचकोलों से मुझ पर प्रमाद-सा छाने लगा, खाना भी खा रखा था और फिर दोपहर का समय था। कुछ क्षण बाद मैं वहीं कोने में सिर लगाये सो गई। जब उन्होंने

जगाया तो हम अपने नगर के समीप पहुँच गये थे । गाड़ी बल खा रही थी। आँखें मल कर और अँगड़ाई लेकर मैंने देखा—स्टेशन दिखाई दे रहा था । तभी एक दीवार हमारी गाड़ी के साथ-साथ चलनी शुरू हो गई; अगनित लाइनें, शंट करते इञ्जन और डिब्बे, और गाड़ी प्लेट-फार्म पर रुक गई।

खुश-खुश मैं उतरी। घर पहुँचे तो सास ने नीचे आकर स्वागत किया। मुझे गले से लगाया और एक लम्बी सांस ली। मैंने देखा, उनकी आँखें भर आईं।

मैंने पूछा—"ललित सो रहा है क्या ?"

पर शायद उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी । उनके हाथ से सामान लेकर ऊपर जाने लगी। जाते-जाते घूमकर सास ने उनसे कहा—"बहू को नीचे बैठक में बिठाओ: ऊपर जरा नौकर बुहारी दे रहा है ।"

बैठक में जाकर मैं कौच पर बैठ गई। वे कमरे में घूमने लगे; पर मुझसे बैठा न गया। मैं उठी, मैंने कहा—"मैं तो जरा नन्हें को देख आऊँ।"

वे रुके, मैंने देखा उनके चेहरे का रंग फीका पड़ गया है, किसी अनिष्ट की आशंका से मेरा दिल धक्-धक् करने लगा। भाग कर और उन्हें दोनों कन्धों से थामकर मैंने पूछा—नन्हा कहाँ है ?

उन्होंने अँगीठी की ओर इशारा किया—दीवार के सहारे एक बड़े चौखटे में जड़ी हुई ललित की तस्वीर पड़ी थी—उसी का बड़ा साइज, जो वे मुझे अस्पताल में दे आये थे।

'नन्हें का अब यही कुछ बच गया है शील…'

और इससे आगे वे कुछ न कह सके। रूमाल से चेहरे को ढाँप; जल्दी-जल्दी दूसरे कमरे में चले गये।

माँ

ऐसे कठिन समय में माँ के दिल पर जो कुछ बीत रही थी उसे दूसरा कौन जान सकता है ? कितनी बार जगत की बात लगी, पर पण्डित जी की 'ख्याति' के कारण टूट गई। एक तो सिरे से ही दूसरी शादी, फिर लड़के का पिता शराबी और जुआरी ! कौन ऐसा क़साई बाप होगा जो अपनी लड़की को ऐसे शरीफ़ आदमी के घर ब्याहना पसन्द करेगा ? आम के पेड़ में आम ही लगते हैं और कड़वे नीम में निबौलियाँ ही। कौन कह सकता है, 'योग्य' पिता का पुत्र भी 'योग्य' न होगा ? दुर्व्यसनों में फँसने के अवसर तो बहुत मिल जाते हैं। हाँ, बच निकलने के कम होते हैं। यही कारण था कि जब जब नाई और पुरोहित के प्रयत्नों से जगत की सगाई हुई, पण्डित जी की 'शोहरत' के कारण टूट गई, और अब जब फिर सगाई हुई तब शादी का ही कोई डौल न था।

पण्डित जी को इस बात की चिन्ता हो, यह बात न थी।

इस सिलसिले में उन्होंने कभी नहीं सोचा था। उन्हें तो आठों पहर बोतल और लाल परी से काम था। कोई मरे चाहे जिये, लड़के की शादी हो या न हो, घर में सम्पन्नता हो अथवा विपन्नता, उन के लिए सब एक बराबर था। जब कभी तबीयत होती तब नशे में झूमकर अलाप उठते—

शामा मेरे अवगुण चित न धरो।

और निश्चिन्त हो जाते, जैसे उन्हें विश्वास हो जाता कि सर्वशक्तिमान् ने उनके सब गुनाह माफ़ कर दिये हों।

यह सब तो था, पर यदि गाड़ी के दोनों पहिये बिगड़ जायँ तो वह चले ही कैसे? पिता अपने कर्तव्य को भूला हुआ था; माँ उसे यथा-शक्ति पूरा किये जा रही थी और यही कारण था कि किसी तरह सब काम चल रहा था। अन्दर से हालत चाहे कितनी ही बुरी हो गई हो, पर बाहर से साख बनी हुई थी।

जगत अपने माँ-बाप का इकलौता लड़का था। नूरमहल के एक हाई-स्कूल में साधारण टीचर था। पण्डित जी ने नौकरी के दिनों में कुछ जमा नहीं किया था, प्रावीडेंट-फंड बाद को शराब की नज़र हो गया और जो एक-दो गहने थे वे धीरे-धीरे जगत की पत्नी की बीमारी में चौधराइन के यहाँ गिरवी रक्खे जाने लगे। और इधर गहने ख़त्म हुए, उधर उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। अब इस विवाह के लिये क्या किया जाय, कहाँ से गहने लाये जायँ, इसी बात की चिन्ता माँ को खाये जा रही थी।

इस अन्धकार में जगत की माँ को केवल एक ओर से प्रकाश की किरण दिखाई देती थी। उसके मैके में ऐसी दरिद्रता न थी; उसके पिता धनी-मानी और सम्पन्न व्यक्ति थे। जगत

के पहले विवाह पर उन्होंने हाथ का एक आभूषण और मूल्यवान् वस्त्र दिये थे। कोई पाँच-छः सौ की चीज रही होगी। उसे आशा थी कि इस बार भी उसके पिता कुछ न कुछ अवश्य देंगे। पाँच-छः सौ न सही, तीन-चार सौ ही सही। मगर इन तीन-चार सौ से क्या बनेगा? गहने-कपड़े, लाग-बिहार, मिठाई-शीरीनी, शादी में क्या क्या न चाहिए? गुड्डे-गुड़िया के विवाह में भी सौ व्यवस्थायें करनी पड़ती हैं और फिर यह तो स्त्री-पुरुष का विवाह था। सोचती—यदि इस बार भी विवाह न हो सका तो क्या होगा? सब आशाओं पर पानी फिर जायगा। उस समय उसे पण्डित जी के व्यवहार पर दुख होता था किन्तु पुराने विचारों की हिन्दू नारी थी, शिकायत का एक शब्द भी ओठों पर लाना पाप समझती थी, कष्ट सहती थी, दुख झेलती थी, पर ज़बान नहीं हिलाती थी।

(२)

रात का तीसरा पहर था, सारी दुनिया मीठी नींद सो रही थी, किन्तु जगत की माँ को नींद कहाँ? वह तो ऐसे भाग गई थी जैसे विपत्ति के समय सौभाग्य! पिंजरे के पट बन्द थे, पर नींद के पंछी उड़ चुके थे।

विवाह होने में केवल बीस दिन रह गये थे और गहनों का अभी तक कोई भी प्रबन्ध नहीं हुआ था। रुपये होते तो चौधराइन से ही गहने छुड़ा लेती और रुपये कहाँ से आते? कोई युक्ति सूझ नहीं रही थी। इसी सोच में रात बीत गई। अँधेरा कुछ कुछ छट गया। मुहल्ले के कुएँ में किसी ने गागर डुबोई। प्रातःकाल पानी भरने वालों का आगमन आरम्भ हो गया था। सामने के घर में चक्की चलने के साथ किसी के गाने

की आवाज़ आने लगी। शायद विधवा कंसो प्रातःकाल उठकर अपने काम में लग गई थी। दूर कहीं प्रातः का मुअज्ज़न मुर्ग़ अपनी पूरी आवाज़ से बोल उठा। माँ उठी, और फिर; जैसा उसका नित्य का क्रम हो गया था, अन्दर कमरे में गई; ट्रंक खोल कर उसने उसमें से छोटा-सा डिब्बा निकाला और एक-एक चीज़ बाहर निकाल कर देखने लगी। था ही क्या? चाँदी के लच्छे और ढोल था; सोने की दो अँगूठियाँ थीं, पुराने फ़ैशन की एक माला और छः माशे का एक सौकनमोहरा[१] था। शादी दूसरी थी, इस लिये एक अँगूठी तुड़वाकर सौकनमोहरा बनवा लिया था। भारी गहने तो सब चौधराइन के यहाँ गिरवी रक्खे थे। एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उसने इन सबको डिब्बे में बन्द किया, डिब्बे को ट्रंक में रक्खा और ताला लगा दिया। फिर वहीं सिर को घुटनों पर रखकर सोचने लगी। कई दिनों वह प्रतिदिन ऐसा ही करती थी। सुबह उठकर गहनों को निकाल कर गिनती और फिर वहीं बैठकर सोचती, किन्तु कोई उपाय समझ में न आता। पर आज अचानक एक बात सूझ गई और इसके साथ ही उसके शरीर में स्फूर्ति की एक लहर दौड़ गई। वह उठी, घर में झाड़ू-बुहारी देकर पूजा करने बैठी और सच्चे दिल से उसने भगवान् से प्रार्थना की कि इस बार उसे असफलता का मुँह न देखना पड़े और फिर वह चौधराइन के घर की ओर चल दी।

चौधराइन का घर समीप ही था। जगत की माँ तेज़ी से

१—सौकनमोहरा—यह सोने का एक पत्र होता है, जिस पर पहली पत्नी का नाम खुदा होता है। दूसरी शादी के समय यह नई पत्नी के गले में पहनाया जाता है।

जा रही थी, उसने जल्दी जल्दी देहलीज़ पार की, किन्तु निचले आँगन में जाकर रुक गई। ऊपर जाय कि न जाय? उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी। मन में सन्देह-सा उत्पन्न हो उठा। उसके कान में जैसे किसी ने कहा—आज काम न बनेगा। उसने चाहा, मुड़ जाय। पर मुड़ कर जाय कहाँ? विवश हो आगे बढ़ी। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर पहुँची। मालूम हुआ, चौधराइन अभी सो रही हैं। वह देहलीज़ पर ही एक ओर होकर बैठ गई।

कोई एक घंटे के बाद जब चौधराइन की नींद टूटी तब एक हलकी सी मुसकराहट के बाद उसने जगत की माँ से उसके आने का कारण पूछा।

जगत की माँ चुप-सी हो गई। यहाँ कहने के लिये घर से जो कुछ सोच कर आई थी वह सब भूल गया। कह सकी तो मुश्किल से इतना ही—"जगत के विवाह में केवल बीस दिन रह गये हैं।"

चौधराइन फिर मुसकराई—"बधाई हो। मैं तो उधर आ ही नहीं सकी।" फिर लम्बी साँस खींचकर बोली—"यह कमर का निगोड़ा दर्द कुछ ऐसा चिमटा है कि कहीं जाने ही नहीं देता। मैं तो स्वयं बधाई देने के लिये जाना चाहती थी।"

"आपको ही बधाई है"—जगत की माँ ने धीमे स्वर से कहा।

चौधराइन ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"परमात्मा करे, फिर घर बस जाय। बेचारा उदास रहता है। मैं तो जब देखती हूँ, जी मसोस कर रह जाती हूँ। इस बार कहाँ बात लगी है?"

जगत की माँ ने उत्साहित होकर कहा—"नकोदर में रिश्ता हुआ है; पर विवाह हो सकेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। उनकी आदत तो आप जानती ही हैं—और पैसे के बिना कुछ होता नहीं।"

अब चौधराइन ने कुछ शङ्कित नेत्रों से उसकी ओर देखा।

जगत की माँ कहती गई—"मैं आपको तीन सौ रुपया दे दूँगी। आप मुझे कृपा कर मेरे सब गहने दे दें। इस बात का मैं वचन देती हूँ कि गौने के बाद सब गहने आपके पास फिर रख जाऊँगी।"

चौधराइन ने बेरुखी से कहा—"मैं सोचकर उत्तर दे सकूँगी। शाम को रिखीराम आ जायगा तब उससे सलाह करके तुम्हें बताऊँगी। आपकी ओर पिछले तीन महीने का सूद भी तो है।"

"वह भी मैं तीन सौ के साथ ही दे दूँगी।" जगत की माँ ने कहा। लेकिन चौधराइन ने यह नहीं सुना। उस समय तक वह उठकर अन्दर जा चुकी थीं। जगत की माँ चुपचाप सीढ़ियाँ उतर आई और फिर आकर धम से फ़र्श पर बैठ गई। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुसीबतों का अँधेरा पहले से कई गुना गहरा हो गया हो। उसने दुपट्टे से मुँह छिपा लिया और रोने लगी। उस समय पण्डित जी ने बैठक से तान लगाई—

"शामा मेरे अवगुण चित न धरो"

(३)

शाम को चौधराइन का जवाब आगया। वही जिसकी सम्भावना थी। माँ ने शान्ति से उसे सुना और फिर अपने

काम में लग गई। उसकी आँखें एक बार भर आईं, किन्तु उसने उन्हें पोंछ डाला। यदि आँसू बहाने से ही विवाह हो जाता तो आज तक जितने आँसू उसने बहाये थे उनसे मुहल्ले भर के लड़कों की शादियाँ हो जाती।

जगत की माँ एक असाधारण प्रकृति की स्त्री थी। वह न होती तो घर कब का चौपट हो गया होता और पण्डित जी या तो यमुना के किनारे धूनी रमा लेते या जेल की रोटियाँ तोड़ते। कई बार अवसर पड़ने पर जगत की माँ उनके आड़े आई थी, कई बार उसने उनके लिए रुपये का प्रबंध किया था। साहस और हिम्मत की वह मूर्ति थी। उसने जगत को एक पत्र लिखवाया कि छुट्टी लेकर आ जाय और स्वयं अपने मैके को रवाना हो गई।

होशयारपुर में उसका मैका था। उसके पिता के पास धन का अभाव न था। वे चाहते तो एक छोड़ बीस शादियाँ करवा देते। किन्तु उन्होंने पुरोहिताई से रुपया कमाया था, पैसा पैसा करके, पेट काट काट कर, धन एकत्र किया था। वे कंजूस थे और उन्हें पैसे की जुदाई बहुत अखरती थी। फिर सबसे बढ़कर यह बात थी कि उनकी पत्नी दूसरी थी। सौतेली माँ की उपस्थिति में जगत की माँ को कुछ अधिक मिलने की सम्भावना न थी, फिर भी वह सब तरफ़ से निराश होकर वहीं जा रही थी। किनारा कितना भी चिकना क्यों न हो, उस पर सहारा देने की कोई वस्तु हो या न हो, किन्तु और कोई आश्रय न पाकर डूबता हुआ उसे ही पकड़ने के लिए हाथ-पाँव मारता है। वहाँ पहुँची तब उसकी सौतेली माँ ने अड़चन डाल दी। बहुत कुछ झगड़-रगड़ के बाद जगत की माँ चार सौ रुपया पा सकी। वहाँ से

चली तब भविष्य की चिन्ताओं ने उसे घेर लिया। जैसे क्षुधातुर व्यक्ति रोटी का एक टुकड़ा पाने पर भूख से और भी व्याकुल हो उठता है, उसी तरह जगत की माँ इन चार सौ रुपयों को पाकर और भी चिन्तित हो गई थी। अब उसका मस्तिष्क किसी न किसी तरह इन्हीं से काम निपटाने की तरकीबें सोच रहा था। चौधराइन के व्यवहार ने उसके हृदय में अलग आग सुलगा दी थी, उसके यहाँ अपना एक भी आभूषण नहीं रखना चाहती थी।

घर पहुँचते ही उसने एक सौ रुपया तो मिठाई इत्यादि के लिए रख लिया और बाक़ी तीन सौ लेकर बीबी अमरकौर के पास पहुँची ताकि उससे कुछ और रुपया लेकर चौधराइन से गहने ले ले और उन्हें अमरकौर के पास रख दे। इस बात में तो अमरकौर को कोई आपत्ति न हो सकती थी, लेकिन जगत की माँ चाहती थी कि रुपये तो ले ले, पर गहने गौने के बाद ले, और इस बात पर अमरकौर का राज़ी होना ज़रा मुश्किल था। कारोबार के मामले में वह भी कम सख़्त न थी, पर जगत की माँ घर से निश्चय करके निकली थी कि जैसे भी होगा उसे मना ही लेगी। अमरकौर के दिल में भी अभी दया का सर्वथा लोप न हुआ था, इसलिए जगत की माँ के बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मान गई। उसने इस शर्त पर रुपया दे दिया कि गौने के बाद उसे गहने मिल जायँगे। अमरकौर से रुपया ले कर जगत की माँ ने चौधराइन से सब गहने ले लिये और ख़ुशी ख़ुशी दूसरी तैयारियाँ करने लगी। सन्ध्या को जब जगत नूर-महल से आया तब उस ने देखा माँ का चेहरा खिला हुआ है।

(४)

निश्चित तारीख़ को मुहल्ले की स्त्रियों के सुहावने गीतों में बाजे-गाजे के साथ बारात रवाना हुई। जगत की माँ ने शेष सब प्रबन्ध कैसे किया, यह न पूछिए। अपने पुत्र का घर बसाने के लिए वह घर घर फिरी। अपने स्वाभिमान को भी उसने कुछ दिनों के लिए भुला दिया और किसी से बीस, किसी से तीस लेकर काम चलता किया। उसे आशा थी कि दहेज़ में कुछ न कुछ ज़ेवर अवश्य मिलेगा और सौ डेढ़ सौ न सही, इक्यावन रुपये तो बिदा में अवश्य ही दिये जायँगे। इससे छोटी-मोटी रक़में उतर जायँगी। अमरकौर से जिन गहनों के बदले रुपया लाई है वे उसे पहुँचा देगी। इस तरह सुगमता से सब काम हो जायगा।

तीसरे दिन बारात आगई। खुशी खुशी जगत की माँ बहू को लेने गई। पण्डित जी के सम्बन्ध में पूछा तब मालूम हुआ कि शराबख़ाने में औंधे मुँह पड़े हुए हैं।

विवाह के गीत गाते गाते मुहल्ले की स्त्रियाँ बहू को घर लाईं। सब रस्में भली भाँति अदा की गईं। दहेज़ का सामान नीचे बैठक में रख दिया गया। बहू का सुन्दर मुखड़ा देखकर सबके दिल खिल गये। कोई कहती—जगत पहले जन्म में मोतियों का दान करके आया है, कोई कहती चाँद का टुकड़ा ब्याह लाया है। छोटी छोटी लड़कियाँ बहू का मुँह देखने के लिए टूटी पड़ती थीं। घर में खूब चहल-पहल थी, किन्तु जगत की माँ इन सबसे अलग एक कोने में एक व्यक्ति से धीरे धीरे कुछ पूछ रही थीं।

"तो क्या आपको कुछ भी मालूम नहीं ?"

"कुछ भी नहीं, जरा भी नहीं, मुझे किसी ने पता भी नहीं चलने दिया।"

"आप अगुआ थे।"

"वहाँ मुझे कौन पूछता था? अगुआ तो वहाँ मास्टर जी थे। मैं तो जैसे उनके हाथ की पुतली था।"

"तो क्या आपको बिदा की भेंट का भी पता नहीं! मिली भी या नहीं मिली?"

"मैं कहता हूँ, मुझे बिलकुल पता नहीं। चाननराम वहाँ था ही कौन। सब कुछ तो मास्टर जी करते थे। मुझ तक तो किसी बात की गन्ध तक भी नहीं आई।"

माँ निराशा से सिर हिलाकर फिर काम में लग गईं। जिस आशा के आधार पर आज तक सब कुछ करती आई थीं वह आधार ही छिन गया। उल्लास की जगह फिर विषाद ने ले ली। अन्तर में दुख का पारावार छिपाये वह सब काम करने लगी। पण्डित जी की मद्यपता के कारण उसने चाचा चाननराम के हाथ में ही विवाह का सब काम सौंप दिया था। वे जगत के सगे चाचा तो न थे, पर जगत की माँ को उन पर पूरा भरोसा था। पर वहाँ उनको किसी ने पूछा भी नहीं। वहाँ जगत के एक मित्र, जो उसके साथ ही स्कूल में पढ़ाते थे, सब बातों के कर्ता-धर्ता थे। आपस में गुप-चुप सब बातें होतीं और चाचा चाननराम के बिना पूछे ही सब कुछ तय हो जाता। मास्टर जी लड़कीवालों से इस तरह घुल-मिल गये थे, जैसे उन्हीं में से एक हों। इधर लड़केवालों की ओर से भी वही काम करते। दहेज का दिखावा ही उन्होंने बन्द करा दिया। हाँ, इधर से सब गहने भिजवा दिये। पण्डित जी शादी के प्रबन्ध में चाहे कुछ भाग न

ले सकते हों, पर इसकी खुशी में वे किसी से पीछे नहीं रहना चाहते थे, इसलिए इन दिनों उन्हें अपने तन-बदन का भी होश न था। सुबह पीते थे, दोपहर पीते थे, शाम को पीते थे। उधर से क्या मिला, बिदा में कितने रुपये रक्खे गये, इस बात का किसी को भी पता न लग सका और चाचा चाननराम अगुआ होने का चाव दिल में लिये हुए ही वापस आगये।

जगत की माँ प्रकट रूप में सब काम पूर्ववत् कर रही थी। परन्तु उसका मस्तिष्क और मन तो कहीं और ही थे, हाँ, हाथ-पाँव अवश्य चलते हुए नजर आते थे। बड़े यत्न से उसने आशा का जो दुर्ग बनाया था वह उसे ढहता हुआ प्रतीत हो रहा था। नीव हिल गई थी, दीवारों में दरार आ गये थे। अब गिरा। चेतनाहीन-सी, संज्ञाहीन-सी वह सब काम कर रही थी। दो बार उसके हाथ से मिठाई की तश्तरी गिर पड़ी, लस्सी पीने लगी तब दुपट्टे में ही गिरती गई। वह जाग रही थी या सो रही थी, उसे कुछ भी मालूम नहीं था।

सन्ध्या को जब जगत ऊपर आया तब एकान्त में माँ ने सब कुछ पूछने का यत्न किया। किन्तु जगत ने साफ तौर पर कुछ भी उत्तर ही नहीं दिया। पूछा—"गहने कौन कौन मिले"? कहा—"उसके पास ही हैं, जाकर देख लो।" पूछा—"बिदा में क्या रक्खा गया?" कहा—"मास्टर जी जानें या चाचा चाननराम।" और यह कहकर वह अन्दर कमरे में चला गया। माँ वहीं खड़ी की खड़ी रह गई, और फिर सिर को दोनों हाथों से थामकर वहीं बैठ गई।

(५)

दूसरे सुबह बहू को अपने मैके जाना था। गौना यद्यपि

साथ ही दे दिया गया था, पर प्रथा के अनुसार दुलहन का एक बार अपने माता-पिता के घर जाना आवश्यक था। रात को माँ ने एक-दो बार नीचे बैठक में आकर दहेज़ का सामान देखने की कोशिश की, पर हर बार मास्टर जी यम के दूत की भाँति दरवाज़े में बैठे दिखाई दिये। अपमान और तिरस्कार से वह जल उठी। सारी रात उसने छत पर घूम घूमकर बिता दी और जब दिन चढ़ा तब उसमें हिलने तक की शक्ति न थी। सारी रात वह पण्डित जी की राह देखती रही थी, पर वे न आये थे। चाचा चाननराम को भी उसने दो बार बुलवा भेजा था, पर वे तो विवाह से आने के बाद ऐसे भागे कि फिर सूरत ही न दिखाई। उस समय जगत की माँ अपने आपको सर्वथा असहाय और बेबस महसूस कर रही थी।

विद्युत्-वेग से सब तैयारियाँ हो गईं। सब कुछ तो पहले से ही तय था। जगत की माँ को कुछ सुझाई न दे रहा था, उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा था, फिर भी मशीन की भाँति सब काम किये जा रही थी। दूसरी स्त्रियों के साथ वह भी दुलहिन को ताँगे पर चढ़ाने गई। उसने देखा, वह बड़ा-सा ट्रङ्क जिसमें दहेज का सब सामान—गहने-कपड़े रक्खे थे, ताँगे पर रक्खा हुआ है। उसे एक वस्त्र तक देखना नसीब न हुआ।

जब ताँगा चलने लगा तब जगत की माँ ने अपना सारा साहस बटोरकर कहा—'कल ही गौना ले आना, इस अवसर पर ससुराल में अधिक नहीं अटका करते।'

बेपरवाही से जगत ने उत्तर दिया—"मैं इधर न आ सकूँगा। मेरी छुट्टी खत्म हो गई है। मुझे वहाँ से सीधे नौकरी पर जाना है। वहीं से सीधा नूरमहल चला जाऊँगा।

ताँगा चल पड़ा। मास्टर जी ने धीरे से कहा, शुक्र है यह झंझट खत्म हुआ। भई! रोगी का खाया, शराबी का कमाया एक बराबर होता है। हम तो तुम्हारे लाभ की ही बात कहेंगे। एक-दो बच्चे हो गये तो फिर क्या करोगे? शराबी के घर में इन गहनों की क्या बिसात है?

माँ खड़ी की खड़ी रह गई, जैसे उसकी समस्त शक्तियाँ शिथिल हो गई हों। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा छा गया। वह देर तक वहीं खड़ी रही। जब ताँगा दृष्टि से ओझल हो गया तब चुपचाप चली आई। एक आह भी उसने नहीं भरी, एक निःश्वास भी उसने नहीं छोड़ा, जैसे प्राणों से भी प्रिय पुत्र की कृतघ्नता ने उसकी वेदना का गला घोंट दिया हो। बैठक में एक हलका-सा कौच का सेट रक्खा हुआ था। कोई बीस रुपये का होगा। बस, इतने परिश्रम, इतनी मेहनत के बाद उसे यह देखने को मिला। उस समय उसे महसूस हुआ, जैसे विपत्तियों के अथाह सागर में वह एकाकी गोते खाने के लिए छोड़ दी गई हो। जगत वापस न आयगा। वह अमरकौर को कौन से गहने देगी; लागियों का लाग कैसे देगी; मुहल्लेवालों की छोटी-छोटी रक़में कैसे भुगतायगी। जब वे सब उससे तक़ाज़ा करेंगे तब वह क्या उत्तर देगी। जो कुछ आज तक नहीं हुआ वह अब होकर रहेगा। उसे कितना अपमानित होना पड़ेगा। उसने अमरकौर से कहा था—हाथ की पाँचों अँगुलियाँ बराबर नही होतीं; संसार से दयानतदारी का खात्मा नहीं हो गया। अब वह उसे कैसे मुँह दिखायगी? इस बेशरमी से तो मृत्यु अच्छी। माँ की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सहसा उसे एक ख़याल आया। पण्डित जी की अलमारी में अफ़ीम की एक डिबिया

रक्खी रहती थी। जब शराब के लिए पैसे नहीं होते थे, वे अफ़ीम से ही काम चला लेते थे। उसने बढ़कर डिबिया उठा ली। उसे खोला, खिल उठी, जैसे उसे विष नहीं, जीवनामृत मिल गया हो। एक बार ही सारी की सारी अफ़ीम डिबिया से निकाल कर उसने मुँह में रख ली और कौच में धँस गई। जीवन के सब दुख, सारी विपत्तियाँ, समस्त हारें एक एक करके उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। एक विचित्र प्रकार की तन्द्रा उसकी आँखों पर छाने लगी। उस समय बाहर से गाने की आवाज़ आई--वही चिर-परिचित, जानी-पहचानी, सुरीली तान—

शामा मेरे अवगुण चित न धरो।

और दूसरे क्षण बग़ल में पगड़ी दबाये झूमते-झामते पण्डित जी बैठक में दाख़िल हुए।

पत्नीव्रत

निर्विकार रूप से गोविन्द ने आकर लक्ष्मी की चारपाई के इर्द-गिर्द पर्दे लगा दिये—पर्दे जो लकड़ी के फ्रेम में सफ़ेद कपड़ा लगा कर बनाये गये थे इच्छानुसार खोल लिये जाते थे और फिर बन्द करके दीवार के साथ रख दिये जाते थे। तब मिस सुलताना और मिसबैटी अपने हलके चपल पैरों से तेज़ तेज़ चलती आईं और फिर डाक्टर अपनी सौम्य तथा गम्भीर आकृति को लिये, अपने भारी कदमों को धीरे धीरे रखते हुए उन पर्दों के अन्दर चले गये।

कुछ क्षण तक निस्तब्धता छाई रही। केवल छत पर लगे हुए सफ़ेद परों वाले पंखे अपनी अविच्छिन्न गति से चलते रहे और जून की तपती दुपहरी अपने अर्धनिमीलित नेत्रों से प्रमाद की हालत में चुपचाप पड़ी रही।

तभी पर्दे के पीछे से कुछ उखड़ी उखड़ी साँसों की आवाज़ आई, फिर लक्ष्मी के उखड़े उखड़े शब्द, और फिर

सुलताना का दीर्घ निःश्वास। तब डाक्टर ने कहा—"स्ट्रेचर ले आओ।" और यह कह कर, पर्दे के पीछे से निकल कर वे जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। तब रूमाल से आँखें पोंछती हुई मिस सुलताना निकली। दूसरी बीमार स्त्रियाँ उत्सुक नजरों से उधर ही ताक रही थी। उस के निकलते ही रशीदा ने पूछा—क्यों?

खत्म हो गई—भरे गले से सुलताना ने उत्तर दिया।

आखिरी वक्त क्या कहती थी? सुरती बोली।

सिर्फ एक बार खन्ना साहब को याद किया और बस! और यह कह कर आँसू पोंछती हुई वह जल्दी जल्दी स्ट्रेचर लेने चली गई।

लक्ष्मी अपने पति को खन्ना साहब कह कर पुकारती थी। लाहौर ही में वे नौकर थे। हर सातवें दिन नियमित रूप से लक्ष्मी को देखने आते थे। कोई इतने खूबसूरत तो न थे, पर ऐसे भी नहीं कि बदसूरत कहे जा सकें। आँखों में तो उन की कुछ ऐसी बात थी कि आदमी अनायास ही उन की ओर खिंच जाता था और फिर इतनी बातें करते थे, इतने कहकहे लगाते थे कि जब वे आ जाते तो अस्पताल के इस नीरव, निस्तब्ध वातावरण में जीवन आ जाता। लक्ष्मी ही उन के आने की प्रतीक्षा करती हो, यह बात न थी। उस बड़े खुले कमरे में, लोहे की निर्मम चारपाइयों पर लेटी हुई बुखार, टैम्प्रेचर, दवाई परहेज की बातें सुनते आजिज आई हुई स्त्रियाँ प्रति सप्ताह उन के आने की प्रतीक्षा किया करती। वे बातें चाहे अपने सम्बन्धियों से करती हों, पर कान तो उनके उधर ही लगे रहते। और लक्ष्मी—वह तो न जाने यह सात दिन कैसे बिताती थी?

हँसती थी, दूसरों को हँसाती थी, पर इन तमाम हँसी कहकहों में पति की प्रतीक्षा जैसे हृदय के किसी अज्ञात स्तर के नीचे दबी पड़ी रहती थी और शायद यह हँसी कहकहे अस्पताल में एक बार उदय होकर फिर अस्त होने का नाम ही न लेने वाले दिनों को काटने का साधन-मात्र ही थे। आज ही जब वह इस घातक रोग से ग्रसित थी, उसे अपने पति के प्रति इतना मोह पैदा हो उठा हो, यह बात नहीं, उसी दिन जब विवाह के बाद एक महीना ससुराल में गुज़ार कर वह अपने मैके पहुँची थी तो उस की सहेलियों ने जान लिया था कि बस्ती की आज़ाद फिज़ा में स्वतन्त्र खेलने वाली भोली-भाली अब स्नेह की जंजीरों में बँध गई है।

हर तरफ़ से उसे घेर कर जब सहेलियाँ बैठ गई थी तो गर्व से उस ने कहा था—उन की बात पूछती हो, वे तो मुझे पल भर भी आँखों से ओझल नहीं होने देते, कितनी देर मेरी ओर देखते रहते हैं और कहते हैं—

उसका चेहरा लाल हो गया था। और सहेलियों के अनुरोध पर गुलाब बन कर उस ने कहा था—कहते हैं कि तुम तो स्वर्ग की देवी हो, मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ।

शीला की ईर्ष्या-युक्त आँखों ने तब देखा था कि उसका यह कथन सहज अपने पति की प्रशंसा करने वाले नारी स्वभाव का ही द्योतक नही, वरन् उस गहरे अनुभव का परिचायक है, जिस का समर्थन उस का अंग अंग कर रहा था। तब अपने पति की अन्य-मनस्कता का ध्यान आने पर उसके हृदय से दीर्घ निःश्वास निकल गया था।

सावित्री ने अपनी ईर्ष्या का प्रदर्शन एक दूसरे ही ढंग से

किया था, खिसियानी हँसी के साथ बोली थी–हाँ बहन, उन्हें प्रेम क्यों न होगा, एक बार हाथ से गँवाकर ही आदमी चीज़ की कद्र करता है।

इस वाक्य में जो व्यंग था, उस की ओर ध्यान दिये बिना अपने उल्लास की रौ में सरला लक्ष्मी ने अपनी सहेलियों को अपने इस एक महीने के वैवाहिक जीवन की अनेकों कहानियाँ सुना डाली थीं–किस प्रकार उसके पति उस पर जान छिड़कते हैं, उसे आँखों से ओझल तक करना पसन्द नहीं करते। दफ़्तर में भी जाने कैसे समय बिताते हैं। पहली पत्नी, वे कहते हैं, वह तो गँवार और मूर्ख थी, तुम्हें पाकर तो मैं धन्य हो गया हूँ।

तारा ने तब हँसते हुए कहा था—सास को भला यह सब कैसे भाता होगा?

दिल की तो उनके मैं क्या जानूँ बहन—लक्ष्मी ने कहा था,—पर मीठी तो वे ऐसी हैं जैसे मिश्री, बोलती हैं तो रस घोल देती हैं। मेरी तो आदत तुम जानती हो, सोते सोते धूप चढ़ जाती है इस का कभी बुरा उन्हों ने नही माना। स्वयं वे प्रातः चार बजे उठ कर, नहा-धो, पूजा-पाठ कर घर का सब काम समाप्त कर देती हैं। मैं कुछ करने की कोशिश भी करूँ तो कहती हैं—तुम्हें ही तो करना है बहू, मैं कब तक बैठी रहूँगी!

और उस दिन बस्ती में लक्ष्मी की कर्त्तव्य-परायणा सास और पति की कहानी घर-घर फैल गई। विवाहित स्त्रियों ने प्रार्थना की कि उन के पति और सासें भी ऐसी ही बन जायँ और कुँवारी लड़कियों ने दिल ही दिल में कहा—भगवान हमें भी ऐसा ही घर-वर देना।

रबड़ के पहियों वाला स्ट्रैचर किसी आवाज के बिना धीरे-धीरे पूर्व के दरवाजे से दाखिल हुआ। गोविन्द उसे धकेल रहा था और मिस सुलताना चुपचाप उस के साथ चली आ रही थी। सदैव हँसने वाला उस का चेहरा उतरा हुआ था, जैसे कि उस के ही किसी आत्मीय की मृत्यु हो गई हो। मौतें अस्पताल में नित्य ही होती रहती हैं, और इन्हें देखते देखते अस्पताल के कर्मचारी उन के अभ्यस्त हो जाते हैं, अविचलित भाव से काम किये जाते हैं, पर लक्ष्मी से सुलताना को कुछ खास प्रेम हो गया था। सुलताना ही क्या, सब को स्नेह हो गया था। अपने वैवाहिक जीवन की कितनी घटनायें और फिर किस सरलता से उस ने सुनाई थी। सास के सम्बन्ध में उस ने जो इतना ऊँचा ख्याल बना रखा था उसे टूटते देर नही लगी। खन्ना साहब तब नौकर नही हुए थे पर नीति से काम लेना वे जानते थे। माँ के सामने चुप रहते पर एकांत में कहते—लक्ष्मी इन सारे कसूरों के लिये मैं तुम से माफ़ी माँगता हूँ। और तब सास की झिड़कियाँ, ताने, गालियाँ सब उसे भूल जातीं और पति में उस की श्रद्धा और भी कई गुनी बढ़ जाती। वे साथ हैं तो फिर संसार भी क्यों न विरुद्ध हो जाय, वह सब विरोध हँसती हुई झेल लेगी। मन न होते हुए भी तब उस ने सास को खुश करने के लिये भगवती दुर्गा की आराधना करना सीखा, अपने प्रमाद को छोड़ उस ने काम करने की आदत डाली। किन्तु सास के तेवर न उतरे। उस की झिड़कियाँ, ताने, गालियाँ जारी रहीं, पर लक्ष्मी ने हँस कर सब कुछ सहना सीख लिया था। हाँ, एक बार जब जलता हुआ घी गिर जाने से उस के हाथ जल गये थे और अभी आराम भी न हो पाया था कि

उसकी सास ने भारी-सी कपड़ों की गठरी धोने के लिये उस के आगे रख दी तो सदैव हँसने वाली उस की आँखें रो दी थीं। कपड़े धोते धोते उस के छाले फूट गये थे, तब अन्दर जाकर वह खूब जी भर कर रोई थी और जब खन्ना साहब आये तो उस ने कहा था, मुझे इस नरक से छुटकारा दिलाओ। माँ, अगर धनवान हैं तो क्या इसीलिये इस नरक की यातना सहते जायँ। मुझे तुम्हारे साथ रूखी रोटी पसन्द है पर यह अन्याय तो अब नही सहा जाता।

खन्ना साहब ने तब उसे धीरज बँधाया था और भविष्य की कल्पनाओं का ठण्डा फाहा उस के जलते हृदय पर रख दिया था—जब वे नौकर हो जायँगे तो उसे अपने साथ लाहौर ले जायँगे, माँ तो नवांशहर ही में रहेंगी और वहाँ लाहौर में अनारकली, माल, सिनेमा, तमाशे, नुमाइशें और इन्हीं सुखद कल्पनाओं में खोकर वह अपने हाथों का दर्द, दिल का दर्द, सब भूल गई थी, पर क्रूर विधाता! जब वह दिन आया, खन्ना साहब लाहौर ही में सिविल सेक्रेटरियट में मुलाजिम हो गये तो वह यक्ष्मा जैसे घातक रोग में ग्रसित हो गई।

धीरे धीरे चलता हुआ स्ट्रैचर पर्दे के पीछे पहुँचा और कुछ देर बाद श्वेत चादर में लिपटा हुआ हड्डियों का एक ढाँचा लेकर दोनों ओर बिछी हुई बीमार स्त्रियों की चारपाइयों में होता हुआ पश्चिम के दरवाजे से बाहर चला गया। डाक्टर साहब बरामदे में ही खड़े थे। वहीं से उन्हों ने कहा—मुर्दाखाने में ले जाकर रखो, तब तक खन्ना साहब आ जायँगे। लहनासिंह तो कब का गया हुआ है।

निमिषमात्र के लिये बीमार स्त्रियों के हृदय धड़क उठे।

सब की आँखों में लक्ष्मी का क्षीण, दिक से चूसा हुआ शरीर, मौत की उस श्वेत चादर में लिपटा, भर गया। यक्ष्मा में ग्रसित उन सब का भी तो आखिर यही अंजाम होना है। मौत से कहीं भयानक है। अपनी ही जैसी बीमारी से किसी को मरते देखना और स्वयं तिलतिल करके मरना। कुछ अँधेरा सा बहुतों की आँखों के सामने छा गया। और कुछ आँसू आ गये।

पर्दे के पीछे से निकलकर मिस बैटी गुसलखाने में हाथ साफ़ करने चली गईं और तब सदैव दयामयी, सदैव दूसरों का दुःख-दर्द बटानेवाली मिस सुलताना ने इस कठिन वातावरण को कुछ हलका करने का प्रयास किया। सदैव ऐसा होता था, सदैव जब कोई रुग्णा इस भयानक रोग के हाथों मुक्ति प्राप्त करती थी और कमरे में मौत की कठिन उदास निस्तब्धता छा जाती थी तो सुलताना अपनी मुस्कराहट, अपने मीठे, सान्त्वना भरे स्वर, अपनी दिलचस्प बातों, विचित्र किस्सों से उसे दूर करने का प्रयास किया करती थीं। एक डेढ़ वर्ष से लक्ष्मी भी उसका साथ देती आई थी, पर आज वह स्वयं मौत की गहरी निस्तब्धता में समा गई थी।

घड़ी ने टन टन दो बजाये। टैम्प्रेचर लेने का समय आ गया था। दिल में उठती हुई रुलाई को बरबस रोककर, दवाई में पड़े हुए थर्मामीटर को उठा, झटका देकर मुस्कराने का प्रयास करते हुए वह रशीदा की चारपाई के पास पहुँची, पर आज प्राणपण से कोशिश करने पर भी वह लक्ष्मी की मौत को अपनी हँसी से यों न टाल सकी।

रशीदा ने कहा—मिस साहब, लक्ष्मी भी चली गई!

थर्मामीटर को रशीदा की जिह्वा के नीचे रखकर

सुलताना ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और नब्ज़ की गति देखने के लिये उसकी कलाई हाथ में ली।

सुरती ने कहा—अन्तिम समय तक अपने पति का नाम उसकी ज़बान पर रहा। क्यों मिस साहब, खन्ना भी उससे उतना ही प्यार करते होंगे।

होंगे क्या, करते हैं—सुलताना ने रशीदा की कलाई छोड़ कर कहा—लक्ष्मी को तो मरना ही इसी लिये सुगम हो गया। मैं तो सोचती हूँ कि मुहब्बत करनेवाले पति जिस सौभाग्यवती के पास हैं; मौत उसे कोई भी कष्ट नहीं पहुँचा सकती। बेहोश होने के कुछ देर पहले जब उसे मालूम हो गया कि उसका अन्तिम समय बस अब निकट ही है, तो मुझ से उसने कहा था—मिस साहब, जाने वे क्यों नहीं आये? इस बार तो उन्हें दो सप्ताह हो गये। इस समय इच्छा होती है, काश वे मेरे पास होते! फिर स्वयं ही हँसकर बोली थी—मिस साहब, मैं भी कितनी मूर्ख हूँ? वह न भी आयें तो भी क्या वे मुझ से दूर हैं? मेरे दिल में तो हर वक्त उनकी तस्वीर रहती है! और मैं ही उनसे कौन दूर हूँ। कई बार तो उन्होंने कहा है—लक्ष्मी तुम तो हर वक्त मेरे पास रहती हो। कई बार काम करते करते तुम्हारा ख्याल आ जाने से ग़लती हो जाती है। इसके बाद वह बेहोश हो गई थी। मरते समय भी जब क्षणभर के लिये उसकी बेहोशी टूटी तो अपने पति का नाम उसके मुँह पर था।

यह कहते हुए भीगी आँखों को पोंछ; घड़ी पर दृष्टि डाल सुलताना ने थर्मामीटर रशीदा के मुँह से निकाल लिया और हरारत देखकर नोट करने के लिये चार्ट उठाया।

सुरती ने कहा—पर मिस साहब, यह गहनों की क्या बात थी ? जब भी खन्ना साहब आते थे इनका ज़िक्र अवश्य छिड़ता था। जब से गहने ले गये, बस एक बार ही तो फिर आये हैं।

थर्मामीटर को दवाई में डाल और दूसरा उठाकर सुरती को देते हुए सुलताना ने कहा—मैंने पूछा नहीं, पर जब लक्ष्मी आई थी तो सब गहने अपने साथ ले आई थी। सास नहीं चाहती थीं कि वह एक गहना भी ले जाये। आख़िर इस अस्पताल में इतने गहनों की आवश्यकता भी क्या ? गोखड़ू, गुलूबन्द, डियाँ, माला, लॉकेट, कोई एक गहना हो तो बात है। सब ही गहने ले आई थी। जाने क्यों उसे गहनों से इतना मोह था। सास तो कभी न ले जाने देती पर खन्ना साहब अपनी माँ को समझा-बुझा कर ले आये थे। लक्ष्मी का शरीर दिनों-दिन क्षीण होता जाता था। जब चूड़ियाँ हाथों से निकल निकल पड़ने लगीं, और गर्दन की हड्डियों में माला तक का बोझ उठाने की शक्ति न रही तो उसने उन्हें बाँधकर सिराहने रख लिया। इसी लिये गहनों की बात चला करती थी। आख़िर, खन्ना साहब के कहने पर मैंने एक दिन समझाया कि गहने तुम्हारे ही नाम बैंक में जमा कराये जा सकते हैं, तब कहीं उसने गहने दिये। यही एक बात लक्ष्मी में मुझे विचित्र लगी। जाने गहनों के ही सहारे वह अपने आप को जीवित देखती थी !

सुरती की जिह्वा थर्मामीटर से दुखने लगी थी। आख़िर उसने स्वयं उसे निकाल कर मिस सुलताना को दिया। चौंक कर सुलताना ने थर्मामीटर ले लिया और टैम्प्रेचर देखने लगी।

सुरती ने कहा—यह तो ठीक है मिस साहब, पर गहने लेने के बाद खन्ना साहब ने प्रति सप्ताह आना क्यों छोड़ दिया ? दो सप्ताह हो गये, उन्हें आये हुए।

रशीदा बोली—बीमार न हो गये हों, नहीं, गर्मी-सर्दी; वर्षा-धूप उन्होंने किसी बात का कभी ख्याल नहीं किया। बाकायदा प्रति सप्ताह आते रहे और मैं तो सोचती हूँ मिस साहब, लक्ष्मी की मौत की खबर सुनकर उनके दिल पर क्या गुजरेगी, अपनी बीबी से किसी को ही ऐसी मुहब्बत होगी…

तभी शायद स्ट्रैचर मुर्दाखाने में पहुँचा कर गोविन्द वापस आया और उसके पीछे पीछे डाक्टर साहब भी आये। पर्दे के पास पहुँच कर गोविन्द ने पूछा—कपड़ों को लपेट दूँ डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब उसके पास जाकर खड़े हो गये। नहीं ! उन्होंने कहा—अस्पताल की चादरों को डिसइन्फेक्टर में डाल दो और शेष सब सामान रख दो। अभी शायद खन्ना साहब या उनका आदमी आ जाय। हाँ, गद्दे को बाहर धूप में डाल दो।

तभी बरामदे के पास सीढ़ियों पर साइकल फेंक कर हाँफता हाँफता पसीने से तर लहनासिंह अन्दर आया। डाक्टर साहब ने आगे बढ़कर पूछा—कहो खन्ना साहब मिले, स्वस्थ तो हैं ?

लहनासिंह ने सिर हिलाया। साँस उसकी फूल रही थी, जवाब न बन पड़ता था।

जरा सख्ती से डाक्टर ने पूछा—मिले या नहीं ? कहा नहीं तुमने कि लाश को आज शाम से पहिले ले जायें !

थूक निगल कर लहनासिंह ने कहा—वे तो शादी करने अपने घर चले गये हैं।

ठन ठन करता चार्ट मिस सुलताना के हाथ से फर्श पर गिर पड़ा और रशीदा ने जैसे चीख कर कहा—मिस साहब! मिस साहब!!

———

जीवन

मई की तपती दुपहर में तीनों नगर से बाहर, बहुत दूर, माल को पार कर के लारेंस रोड पर, चुपचाप चले जा रहे थे—चन्दा की माँ, चन्दा और उस का पति।

चन्दा की माँ सोच रही थी—संसार में किसके दिन एक जैसे रहे जो हमारे रहते? चढ़ना गिरना, यह तो मनुष्य के साथ लगा हुआ ही है, और फिर मनुष्य चढ़ने गिरने वाला कौन है? यह तो वही सर्वशक्तिमान खिलाड़ी है, जो चाहता है तो अपने खिलौनों को उत्थान के शिखर पर चढ़ा देता है, चाहता है तो पतन की गहराई में फेंक देता है। फिर दुःख कैसा?

और यह सोच सोच वह अपने मन को धीरज बँधाती चली जा रही थी। प्रायः ऐसा होता था, प्रायः वह ऐसे ही अपने दुःखी मन में उठते हुए उद्वेग को दबाने का यत्न किया करती थी, पर मन न मानता था और अब भी जब इस चिलचिलाती

धूप में सिर का पसीना पाँवों पर से बह रहा था, सड़क पर देखने को भी वृक्ष न था और आगे कठिन मंजिल बाकी थी। उस के मन में कई तरह के विचार उठ रहे थे—खिलाड़ी को सुख-दुःख का खेल देखना है तो शौक से देखे, पर दुःख देने के बाद सुख देकर भी तो वह यह खेल देख सकता है। पहले सुख देने के बाद फिर दुःख के कोल्हू में पीस डालना, कितना बड़ा दण्ड है, कितनी बड़ी यन्त्रणा है। ऐसा करने के बदले वह मनुष्य को उठा ही क्यों नही लेता ? पर यही जैसे उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाता—यदि वह मनुष्य हीं को उठा ले तो पिछले जन्म में उसने जो कर्म किए है, उन्हें कौन भोगे ? कई बार दुःख से विह्वल होकर उसने मृत्यु का आवाहन किया था, पर मृत्यु यों तो न आएगी, जब तक पूर्वजन्म के दुष्कर्मों का शतांश भी बाकी है कोई नहीं मर सकता। तो फिर उसे ही कैसे मौत आ जाती ?······पाँच पाँच बच्चों को जन्म देकर उसने अपने हाथों श्मशान की ठंडी गोद में जा सुलाया, बढ़ा चढ़ा कारोबार अपने सामने बर्बाद होते देखा, जिन सम्बन्धियों को रक्त पिला कर पाला था, उनके डंक सहे और बेघर-बेदर होने के बाद पति की यह दुर्दशा ! चन्दा की माँ ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा—जाने अभी कितना दुःख भोगना बदा है, क्या कुछ देखना बाकी है, कौन से कर्मों का फल भोगना शेष है !

× × ×

एक बङ्गले की दीवार की छाया में चन्दा की माँ रुकी। मैले दुपट्टे के अञ्चल से गरदन पर निचुड़ते हुए पसीने को हवा करते हुए उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। चन्दा और उसका

पति भी उसके पास जा खड़े हुए। कुछ क्षण तक तीनों चुपचाप अपने विचारों में निमग्न खड़े रहे और फिर चुपचाप चल पड़े।

चन्दा को माँ पर गुस्सा था, बहुत गुस्सा। पिता को इतना बड़ा कष्ट हो और लड़की को पता तक न दिया जाए! बचपन के उल्लास भरे दिन, जिन में केवल एक ही चीज—पिता का अपार स्नेह—स्मृति के आकाश पर उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति चमकता था, उसकी आँखों के सामने फिर गए। भोगपुर में उसके पिता का ईंटों का भट्ठा था। खूब चलता था, गाँव में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी, वह तब बहुत छोटी थी, इतने बर्षों के बाद तरस तरस कर हासल की गई, माँ बाप की इकलौती सन्तान! पिता उसे गोद में उठाए फिरते थे। तब भोगपुर के चो❀ पर रेलवे लाइन का पुल न बना था। बरसात के दिनों में जब पहाड़ों पर वर्षा होती, तब जैसे अपनी खोई जवानी पा कर यह चो मस्त, अलबेली चाल से बहने लगता और प्रायः रेलवे लाइन को बहा ले जाता, तब उस के उन्मत्त नर्तन को देख कर शीला मुग्ध हो जाती और ट्रान्समिशन देखने में तो उसे विशेष आनन्द आता। जब भी लाइन बह जाती, वह अपने पिता को चो पर चलने के लिये विवश कर देती। बड़े चाव से देखती कि किस प्रकार यात्री उस पार खड़ी हुई गाड़ी से उतर कर सिर पर गठड़ियाँ उठाए और पाजामे तथा धोतियाँ सम्हालते गुट बाँध बाँध कर चो पार कर के इस ओर खड़ी गाड़ी पर सवार होते हैं।

❀ चो—बरसाती नाला

दुपहर को बरगद के घने वृक्ष की छाया में बैठे वे हिसाब किताब देख रहे होते। वह खेलती खेलती आ जाती, उन के रजिस्टर उठा कर फेंक देती, उन की गोद में चढ़ जाती और मचल उठती कि ठंडी ठंडी हवा में शीशम के घने वृक्षों के नीचे उस के साथ खेला जाए। उस के पिता चुपचाप उठ कर लम्बी सड़क पर वृक्षों की छाया में खेलने लग जाते। ऐसे मौकों पर सदैव उन के ओठों पर गम्भीर मुस्कराहट खेल जाती और हँस कर वे कहा करते, केवल यही एक वाक्य—तुम बहुत तंग करती हो चन्दा!

इस के बाद यद्यपि हालात धीरे धीरे बदलते गए, बड़े भाई और मामा के लड़कों की स्वार्थ-प्रियता और कृतघ्नता के कारण, यद्यपि कई बार उन्हें अपना काम बन्द कर के विदेश में जाना पड़ा, तो भी चन्दा के पास उन्होंने दुःख की छाया तक न फटकने दी। उसे याद था कि जब वह पाठशाला जाती थी तो उस के पास इतने गहने थे, जितने नव-विवाहिता वधुओं के पास भी नहीं होते। उसे वह दिन भी याद था जब उस के विवाह के अवसर पर उस के पिता ने पर्याप्त धन न होने के कारण अपना चलता चलाता भट्टा बड़े भाई के पास बेच दिया था और इस बुढ़ापे की हालत में बेकारी के भयानक अजगर का ग्रास बनना स्वीकार किया था।

वही उस के पिता जब इतने बीमार हुए कि अपने होशो-हवास तक खो बैठे तो उसे पता तक न दिया गया! वह अपने पति के साथ लाहौर की दिलचस्पियों का आनन्द उड़ाती रही और उस के पिता......सोचते सोचते उस का गला भर आया। उस ने अपनी माँ की ओर देखा—जर्जर शरीर, प्रायः ज्योति-

हीन आँखें, मैले कपड़े, घिसी हुई एड़ी का जूता लिए जैसे मुसीबतों के भार से झुकी हुई अपने आप में खोई चली जा रही थी ।

चन्दा ने पूछा—"माँ, अब उन्हें होश है क्या ?"

माँ जैसे सोते सोते जागी—"हाँ, पिछली बार जब मैं गई थी तो उन्हें आदमियों की पहचान थी ।"

चन्दा ने फिर पूछा—"और माँ, उन से काम तो नहीं कराया जाता ?"

"नही बच्ची, वे काम करते ही नही, चौकीदार ही उस दिन कह रहा था कि और सब काम करते हैं पर पंडित काम नही करते, सारा सारा दिन पूजा पाठ में बिता देते हैं ।"

"और माँ उन की सेहत कैसी है ?"

"पहले से तो अच्छी ही दीखी बेटी !"

× × ×

एक बङ्गले के फाटक के पास लगे हुए एक वृक्ष पर घनी बेल चढ़ी हुई थी, और उस में लाल लाल फूल भी लगे थे। जैसे किसी पूर्व निश्चय से तीनों ज़रा सुस्ताने के लिए उस की छाया में चले गए ।

चन्दा का पति सूट और हैट पहने था, स्वयं चन्दा भी एक सुन्दर साड़ी में आवृत थी, इस लिए थके होने पर भी वे बैठने का साहस न कर सके, पर माँ को तो कोई ऐसा संकोच न था और फिर उस की श्रान्त थकी देह—हाथ का बर्तन धरती पर रख कर वहीं गरम धूल पर वह बैठ गई ।

चन्दा के पति ने दबी निगाह से अपनी सास की ओर देखा । गर्द से अटे हुए रूखे शुष्क बाल, लटकते हुए पपोटे,

ढीली झुर्रियाँ, कठोर हाथ-पाँव, और जैसे दुःख और काम के आधिक्य से काला पड़ा हुआ चेहरा। उस ने बरबस एक दीर्घ निःश्वास को निकल पड़ने से रोक लिया, और उस की आँखों के सामने पिछले कई वर्ष क्षणों की भाँति घूम गए। विवाह से पहले ससुराल के सम्बन्ध में, वहाँ के व्यवहार के सम्बन्ध में, उस ने कितनी मधुर कल्पनाओं के गढ़ बनाए थे—सास का माँ से भी अधिक गहरा स्निग्ध, खुला प्रेम, अपने दामाद की प्रशँसा करते समय गर्व से खिला हुआ मुख, खाते-खिलाते समय के अनुरोध, मीठी झिड़कियाँ, और ताने—कैसी कैसी सुखद कल्पनाओं में वह बसा करता था! पर कितनी जल्दी वे प्रासाद ढह गए! विवाह के दिन ही उस ने महसूस किया था, जैसे वातावरण कुछ कठिन कठिन-सा है। बारात को खाना अच्छा खिलाया गया था। दहेज भी पर्य्याप्त दिया गया था, और दूसरे व्यवहार में भी कोई त्रुटि न आने दी गई थी, पर तो भी उसे प्रतीत होता था जैसे कहीं कुछ बोझीलापन-सा अवश्य है और व्यवहार में शिष्टाचार की, तकल्लुफ़ की मात्रा अधिक है। सास को उस ने देखा दबी दबी, घुटी घुटी, डरी डरी और ससुर को उस ने पाया गुपचुप, गम्भीर, खोया खोया-सा। बस एक बार जब विदाई का समय आया और चन्दा ऊँचे रो कर अपने पिता के गले से चिमट गई तो उस सौम्य गम्भीर व्यक्ति के चेहरे पर उसने करुण हँसी देखी थी और सुना था—"हैं, बचपन न करो—बस बस, चलो अब बैठो ताँगे में।"

सोचते सोचते चेतन के अन्तर से एक लम्बी साँस निकल गई। उस की सास उठ खड़ी हुई और तीनों चलने लगे। लारेंस रोड खत्म हो गई थी और जेल रोड आ गई थी। तीनों

चुप चाप उस पर हो लिए। चेतन फिर अतीत के पृष्ठों में गुम हो गया।

विवाह के बाद वह एक दो बार ससुराल गया था, तो भी यद्यपि खातिरदारी उसे बहुत मिली पर सौहार्द्र का उस ने अभाव ही पाया और आखिर एक दिन उसे इस का कारण भी मालूम हो गया। चन्दा ने हाथ जोड़ कर रुँधे गले से उसे सब कुछ बता दिया था और प्रार्थना की थी कि वह उस के माता पिता को क्षमा कर दे। उस ने अपने पिता के अच्छे दिनों का चित्र खीचते हुए उसे बताया कि जो कुछ उन के पास था उन्हों-ने विवाह में लगा दिया और अब उन के पास न मकान अपना है न दुकान। और भट्टे पर भी अब उन्हें कोई अधिकार नहीं, इस लिए वे अब उन से बात करते शरमाते हैं।

चेतन को जाने क्यों अपने सुसर पर कुछ हमदर्दी-सी रही थी। उनके चेहरे पर कुछ ऐसी करुणा थी कि उसने जब महसूस किया कि मेरे आने से उन्हें कष्ट होता है उसने सुसराल जाना कम कर दिया, बल्कि चन्दा को भी उसने अधिकतर लाहौर ही रक्खा। पहले तो वह कभी जाता भी, पर इधर एक वर्ष से वह गया ही न था। तभी एक दिन अचानक उसने चन्दा से सुना कि उसका ससुर पागल हो गया है और लहौर के पागलखाने में बन्द है और उसकी सास एक सेठ के घर रसोई का काम करके जीवन के दिन बिता रही है।

उसे याद है—वह अवाक खड़ा रह गया था और उस आशाओं के गढ़ ढह गए थे, पर उनके खंडहर तक मिट जायँगे, ऐसा उसने कभी न सोचा था।

चन्दा की एक बचपन की सहेली भी लाहौर में रहती

थी। वह अपने मैके होकर आई तो शीला भी अपने माँ बाप की ख़बर लेने उस के पास पहुँची, तभी उसे यह सब कुछ मालूम हुआ। नाक-भौं सिकोड़ते हुए उस की सहेली ने कहा था— तुम भी अच्छी हो! वहाँ तुम्हारा पिता पड़ा पागलख़ाने में सड़ रहा है और तुम ख़बर तक लेने नही गई! बस्ती में तो काँव काँव हो रही है।

और उसी दिन चन्दा ने चेतन से रो कर कहा था—मुझे मेरी माँ से मिला दो, मैं उस से सब हाल पूछना चाहती हूँ और उसी शाम जरा अँधेरा होते ही चेतन उसे ले कर सेठ के यहाँ पहुँचा था। चन्दा की माँ के मिलने पर दोनों ने उस से अनुरोध किया कि वह यह नौकरी छोड़ कर उन के यहाँ रहे। आख़िर दामाद में और अपने पुत्र में अन्तर ही क्या है? पर वह न मानी और जब उस ने बताया—कि भाई के हाथों अपमानित होने से उन्होंने कुछ अंट संट बकना शुरू कर दिया, शायद हाथ भी उठाया था और इसी पर निर्दयी भाई ने उन्हें पागलख़ाने में डलवा दिया, नही तो कोई ऐसे पागल तो वे हैं नही, तब दोनों को सान्त्वना मिली थी।

गली के मद्धम प्रकाश में दीवार के साथ सटे हुए कुछ अँधेरे में वे खड़े थे। चेतन को अपनी सास पर, अपनी पत्नी पर और सब से बढ़ कर स्वयं अपने आप पर दया हो आई थी। तब यह किया गया कि यदि उन्हें होश हुआ तो डाक्टर साहब से मिल कर उन्हें पागलख़ाने से निकलवा लेंगे और एक अलग मकान ले कर उन्हें वहाँ रखेंगे, और चन्दा की माँ भी वही रहेगी और यह बात वह मान भी गई। यही कारण था कि आज इस तपती दुपहरी में वे पागलख़ाने को जा रहे थे।

चेतन ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा । अपनी सास के विरुद्ध, सास क्या पुराने रस्म-रिवाज के विरुद्ध उसका हृदय एक तीव्र घृणा से भर आया । ताँगे पर चलने के लिए चन्दा की माँ तैयार न हुई थी । शायद उसके पास पैसे न थे; या थे तो वे सब उसने अपने पति के लिए बादामों की गिरियाँ, मिश्री और दूध लेने में ख़र्च दिए थे और लड़की का पैसा लेना चूँकि पाप ठहरा इसलिये इस कयामत की धूप में तीन मील चल कर वे आए थे ।

× × ×

पागलख़ाने के बाहर छोटे-से बग़ीचे में तीनों बैठ गए। अभी फाटक खुलने में देर थी और डाक्टर; जिससे मिलने का इरादा चेतनराम का था, वह अभी आया न था। इसी लिये तीनों को कुछ देर प्रतीक्षा करना जरूरी हो गया था

यहाँ घने वृक्षों के नीचे कुछ ठंड थी । दिन भी ढल रहा था और हवा भी कुछ मीठी मीठी-सी चलने लगी थी । माँ ने बादामों की गिरियों की पोटली एक ओर और दूध का बर्तन दूसरी ओर रख दिया था और घास पर लेट गई थी । चुपचाप आम के वृक्ष पर आए हुए बौर को देखते देखते उसकी कल्पना पर लगाकर सुन्दर उद्यानों में उड़ चली—सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख है तो इतना दुःख भोगने के बाद सुख के दिन अवश्य आएँगे। सप्ताह में दो बार उसे अपने पति से मिलने की इजाजत होती थी और तब नौकरी करके जो बचा पाती, उसके बादाम ले, गिरियाँ निकाल, और दूध तथा मिश्री ले कर कड़ी धूप में पैदल इतनी लम्बी, सपाट, तपती सड़कें पार करके आती थी और बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से उन्हें बादाम

खिला कर दूध पिलाती थी। गिज़ा की कमी और सम्बन्धियों के दुर्व्यवहार के कारण ही उनका दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया है, यह उसकी धारणा थी। जिन्हें सदैव दूध-मलाई-दही और लस्सी मिले उन्हें इतने दिन फ़ाक़ों से रहना पड़े, और फिर अपमान! वह उन्हें पाव पाव भर गिरियाँ खिला जाती और फिर मिश्री डाल कर दूध पिलाती और फिर कल्पना करती कि जब वह अच्छे हो कर आ जायँगे तो वह इतनी देर में कुछ रुपया जमा करके उन्हें एक पँसारी की दुकान खुलवा देगी और जीवन के जो थोड़े से दिन शेष हैं आराम से गुज़र जाएँगे।

घास पर लेटी हुई चन्दा सामने लोहे के ऊँचे महान फाटक की ओर देख रही थी, जिस पर एक सिख सन्तरी पहरा दे रहा था। इसके अन्दर न जाने कितनी अनगिनत कोठरियाँ हैं और जाने कौन सी कोठरी में उसका पिता पागल बना कर बन्द कर दिया गया है। जाने किस तरह इस गरमी में अपनी कोठरी में लेटा हुआ याद कर रहा है उसे। अवश्य ही अपनी लड़की की याद आती होगी उसे और वह अवश्य ही उसे कठोर समझता होगा। और इधर उसे इन सब बातों का पता ही नहीं। शीला का गला भर आया और वह आँचल से मुँह ढाँप कर रोने लगी।

दोनों हाथ घास पर टिकाए पीछे की ओर झुका चेतन दिल ही दिल में उस सम्भाषण को पक्का कर रहा था जो वह अपने सुसर को देखने के बाद डाक्टर से करना चाहता था। उस के पास सिफारशी चिट्ठी तो थी, पर फिर भी वह जानता था डाक्टर साहब को बताना होगा कि क्यों पंडित को पागल-ख़ाने से निकाल कर घर ले जाना ज़रूरी है और वह कई तरह

की युक्तियाँ और अंग्रेजी भाषा के चुस्त वाक्य अपने मस्तिष्क में दुहरा रहा था।

चार बजे बड़ा फाटक खुला और पागलों की एक टोली मोटे, खुरदरे कपड़े की लम्बी ढीली कमीज़ें और टखनों से ऊँचे तंग पाजामे पहने निकली। कोई अपने आप से बातें कर रहा था, कोई हवा ही में क़त्ले-आम मचा रहा था, कोई यों ही हँसता जा रहा था। उनके साथ जो सन्तरी था उसने उन्हें एक स्थान से गमले उठाने को कहा और सब ने गमले उठा लिए और वह सन्तरी उन्हें लेकर शायद कहीं दूसरी जगह रखवाने के लिए चला गया। इसी तरह दूसरी टोली निकली और गमलों को पानी देने लगी। सब पागल थे, विचित्र हरकतें करते थे, पर फिर भी हिले हुए जानवर की भाँति सब काम किए जाते थे। देखते देखते चन्दा विह्वल-सी हो उठी, उस का हृदय जैसे कंठ में आ गया। अवश्य ही उस के पिता को भी काम करना पड़ता होगा और ये निर्दयी सन्तरी—यह न जाने मार मार कर किस तरह इन पागलों को काम पर लगाते हैं? बिलकुल ऐसे ही जैसे वहशी जानवरों को—जो दिमाग़ से काम नहीं ले सकते, पर फिर भी दंड और यातना सह कर बहुत से काम सीख लेते हैं। वह अपने पिता को एक पल भी यहाँ न रहने देगी और यह सोच कर आकाश की ओर, नीरव, चुप देखते हुए किसी गहरे सोच में तल्लीन अपने पति का कन्धा हिलाकर उसने कहा—सन्तरी से कहो कि हमें उन से मिला दें।

× × ×

चेतन कुछ चौंक कर उठा। अपना कालर और टाई सँवार कर वह फाटक पर गया। सन्तरी से अपना परिचय

दिया और कहा कि हमें पंडित जमनादास से मिलना है और यह कहते हुए अलग ले जाकर उसने एक रुपया भी उसके हथेली में दे दिया।

चार जमनादास उस समय पागलख़ाने में थे। सन्तरी ने सूची देख कर चौकीदार से बताया कि सुलतानपुर वाले पंडित जमनादास को बुला लाओ। इस बीच में कई दूसरे पागलों के रिश्तेदार भी आ गए थे और सन्तरी उनके कहने के अनुसार उन्हें बुलवा रहा था। बड़े फाटक के बाहर ही से उन को देखने की इजाज़त थी, पर इन को उसने फाटक के अन्दर कर दिया। चन्दा और उसका पति एक बेंच पर बैठ गए। माँ धरती पर ही बैठी, तभी एक चौकीदार के साथ उन्होंने पंडित को आते हुए देखा।

चन्दा का हृदय धकधक करने लगा।

समीप आने पर चन्दा ने देखा, दूसरे पागलों की भाँति उसके पिता के गले में भी मोटी खुरदरी क़मीज़ और कम में तंग पाजामा है। उस का गला भर आया और आँखें डबडबा आईं।

चौकीदार ने कहा, "बैठ जाओ!" और एक हिले हुए निरीह पशु की भाँति पण्डित जी दीवार से पीठ लगा कर बैठ गये और फिर चौकीदार की ओर, तथा उन तीनों की ओर देख कर हँस दिये।

चेतन ने देखा उस का ससुर अपना आधा भी नहीं रहा है। उस के दाँतों पर पीला मैल जमा हुआ है, उस के चेहरे पर ज़र्दी छाई हुई है और जब चन्दा की माँ ने बादामों की पोटली खोल कर गिरियों का काग़ज़ उसे दिया तो उसने देखा—उसक

हाथ काँप रहा है।

सब गिरियाँ ले कर एक दो फंकों में पण्डित ने चबा लीं। तब चन्दा की माँ दूध में मिश्री घोलने लगी।

लेकिन चन्दा बेताब थी। उस ने पूछा—"माँ, क्या यह हमें पहचानते नहीं ?"

अपनी नीम अंधी आँखों से अपने पति को देख कर, चन्दा की माँ ने कहा—"क्यों नहीं ?" और फिर सिर का पल्ला ज़रा और नीचे करते हुए उस ने चन्दा की ओर इशारा करते हुए पूछा—"क्यों इस को पहचानते नहीं ?"

"पहचानता क्यों नहीं ?" हँसते हुए पण्डित जी ने कहा।

"भला कौन है यह ?"

"मेरी पत्नी है और कौन ?"

चन्दा ने अञ्चल से मुंह ढाँप लिया और चेतन ने उस की सिसकन सुनी।

तब चन्दा की माँ ने अपने दामाद की ओर इशारा करते हुए पूछा—"भला यह कौन है ?"

हमारे भाई ही तो हैं ! यह कह कर सब की ओर पण्डित ने इस तरह देखा, मानों कह रहा हो, क्या तुम लोगों ने मुझे पागल समझ लिया है ?

रूआसी हो कर चन्दा की माँ ने पूछा—"क्या मुझे भी नहीं पहचानते ?"

"वाह" चन्दा के पिता ने कहकहा लगाया—"अपनी माँ को भी न पहचानूँगा ?" यह कह कर और भी ज़ोर से कहकहा लगा कर उस ने दूध का बर्त्तन शीला की माँ के हाथ से छीन लिया और ग़ट-ग़ट पीने लगा।

ढूल्हो

आज सहसा एक प्रश्न उपस्थित हो उठा है। इस समय जब मैं अपनी बैठक में बैठा अपने एक वर्ष के बच्चे को गोद में लिए हुए खेला रहा हूँ, और खिड़की के बाहर जहाँ हमारी गाय खड़ी है, उससे परे एक टूटी-सी चारपाई पर बैठे हुए एक वृद्ध ने अपनी पत्नी की किसी बात के उत्तर में कपाल पर हाथ मार कर दो बार "अच्छा, अच्छा" कहा, मैं बच्चे को खेलाना भूल गया हूँ। बच्चा रो पड़ा है और मेरी पत्नी दूध दुहते-दुहते मेरी ओर आश्चर्य से देखने लगी है।

× × ×

सन्ध्या का समय है और गरमी का मौसम। दिन भर की तपिश से तंग आकर लोग ऊपर छतों पर जा रहे हैं। कहीं फर्श पर छिड़काव हो रहा है, कहीं फूलों के गमले सींचे जा रहे हैं, कहीं बिस्तर ठंडे किये जा रहे हैं। पुरुष या तो अभी दूकानों से आये नहीं या सैर को निकल गये हैं। स्त्रियाँ घर के

काम-काज से छुट्टी पाकर खाने का सामान ऊपर ले जाने में व्यस्त हैं। नीचे भोजन का क्या आनन्द ? ऊपर छत पर खाना खायँगे, गप्पें हाँकेंगे, और हवा चली तो ठंडे झोंकों का आनन्द भी लेंगे। कल गरमी भी खूब पड़ी थी। ईंट-पत्थर तक भुन गये थे। शायद रात को ठंड हो, वायु चले, पर आशा तो नहीं है। इस गरमी में भी—इस शरीर को जला डालने वाली गरमी में भी वह बूढ़ा और उसकी पत्नी नीचे मोहल्ले में—जहाँ दिन भर धूप का राज्य रहा है, जहाँ इर्द-गिर्द गाय-भैंसें बँधी रहती हैं, जहाँ नालियों से बदबू आती रहती है और जहाँ कूड़ा-करकट के मारे बैठना मुहाल है—दो चारपाइयाँ डाले पड़े हैं। बूढ़े की चारपाई पर इस गरमी की ऋतु में भी लिहाफ़ बिछा हुआ है—मैला-कुचैला और सड़ा-गला। शायद उसे साफ़ चादर नहीं मिली या इस मैले और बदबूदार लिहाफ़ के लिए घर में कोई जगह नहीं। उसकी पीठ कुबड़ी है, कंधों की हड्डियाँ ऊपर को उठी हुई हैं, छाती अन्दर को धँस गई है, आँखों पर एक बड़ा पुराना और फ्रेम टूट जाने के कारण धागों से बँधा हुआ ऐनक है, चेहरे पर दाढ़ी बढ़ आई है, सिर पर मलमल की मैली-सी गोल टोपी है, शरीर नंगा और कमर में मोटे खद्दर का डेढ़ गज़ का अँगोछा है।

उसकी बुढ़िया पत्नी बड़बड़ाती हुई अपनी चारपाई पर जाकर बैठ गई है और धीमे स्वर में बूढ़े को कोसने लगी है। उसकी चारपाई पर केवल एक फटी-सी दरी और मैली-सी चादर है।

दोनों में किस बात पर झगड़ा हुआ, मुझे मालूम नहीं। पर कोई ऐसी ही बात हुई होगी। बूढ़े को प्यास लगी होगी।

वह बीमार है, बहुत चल फिर नहीं सकता। उसने पत्नी से पानी लाने को कहा होगा और बुढ़िया ने उत्तर दिया होगा—"तुम्हें सारा दिन 'प्याकड़ा' (प्यास) ही लगा रहता है, मुझे दिखाई कम देता है। कैसे ला दूँ ? तुम स्वयं क्यों हिम्मत नहीं करते ?" इस पर शायद 'अच्छा' अच्छा' कह कर बूढ़े ने सिर पीट लिया है। कदाचित मेरा अनुमान ठीक है, क्योंकि कुएँ पर पानी भरने वाले को पुकार कर उसने पानी माँगा है और गट-गट दो गिलास पीकर लेट गया है। शायद उसने एक निश्वास भी छोड़ा है।

आज-कल जब गरमी में बर्फ के बिना एक घूँट तक हलक़ के नीचे नहीं उतारा जाता, जब दिन-रात लस्सी और शर्बत का शोर मचा रहता है, जब कुछ घरों में बादामों की शरदाइयाँ भी होती हैं, जब गरमी के मारे गला सूखा जाता है, यह बेचारा प्यास का नाम भी नहीं ले सकता और पत्नी के पानी न देने पर बर्फ का नहीं, सुराही अथवा घड़े का नहीं, केवल कुएँ का ताज़ा पानी पीकर चुपचाप लेट गया है।

और वह बुढ़िया—वह उसकी पत्नी, वह क्या सुखी है ? आँखों से प्रायः अन्धी, लठिया के सहारे चलने वाली, पतली-दुबली-सी, फलबहरी के कारण आधे श्वेत और आधे काले मुख वाली अपनी खाट पर दुखिया बनी बैठी है। एक साक्षात् दुख है तो दूसरी साक्षात् निराशा।

क्या इनका संसार में कोई नहीं ? क्या यह पति-पत्नी जगत् में सर्वथा एकाकी हैं ? नहीं। इनका एक लड़का है—एक इकलौता लड़का। अभी अभी वह इनकी खाटों के पास से होकर अपने तिमंज़िले मकान की छत पर जा लेटा है। उसकी

लड़की उसे पंखा कर रही है और उसकी पत्नी उसके पाँव दबाने लगी है।

"प्यास लगी है।" यह सुनते ही दोनों माँ-बेटी भाग खड़ी हुई हैं, छोटा लड़का बर्फ लेने दौड़ा है।

"शर्बत लाऊँ या शरदाई।" पत्नी ने दूसरी मंज़िल से पूछा है।

"चाहे जो लाओ, पर करो जल्दी।"

शरदाई रगड़ी जाने लगी है। बूढ़े को शायद फिर प्यास लग आई है, उसने जिह्वा को होठों पर फेरा है और एक ठंडी साँस खींच कर करवट ली है।

(२)

मुझे पहले-पहल दूलो का परिचय एक नाच की महफ़िल में हुआ। मैं उस समय न जाने किस श्रेणी में पढ़ता था। शायद किसी श्रेणी में भी नहीं; शायद पढ़ने के निमित्त पाठशाला जाने के लिए मुझे कुछ महीने प्रतीक्षा करनी थी। रात्रि का समय था। गैस के उज्ज्वल प्रकाश में मोहल्ले का कोना-कोना चमक रहा था। मध्य में एक दरी बिछी हुई थी और उस पर एक सुन्दर जाजिम। मोहल्ले में कोई बिरला ही ऐसा व्यक्ति होगा जो 'मुजरा' देखने न आया हो। दो नाज़ुक-सी नर्तकियाँ मज़े से बैठी पान चबा रही थीं—सुन्दर, सुषमा से बनी हुई, बात-बात पर वायु की नाईं बल खा जाने वाली, मदभरी बातों से मोह लेने वाली। उन के पीछे बैठे थे सारंगी थामे हुए उस्ताद जी, और तबलची और हारमोनियम मास्टर—बात-बात पर 'जी-हज़ूर' कहने वाले, बात-बात पर व्यङ्ग के तीर छोड़ने वाले, बात-बात पर क़हक़हे लगाने वाले। सभासद् मानों मंत्रमुग्ध

बैठे इन परियों जैसी नाचने वालियों को देखने में व्यस्त थे—जिन की लज्जा कृत्रिम थी, जिन की मुसकराहट बेबाक थी और जिन की आँखें बिजली की भाँति अस्थिर थीं ।

गैस के चारों ओर बहुत से पतंगे घूम रहे थे। मैं अपने पुराने मकान की मुँडेर पर बैठा उन्हें देखने में मग्न था । मुझे स्मरण है कि मैंने कई बार प्रयास भी किया था कि वह सुन्दर-सी युवती मेरी ओर भी देखे, पर मेरी चेष्टायें निष्फल ही रहीं, और इसीलिए मुझे उस के प्रति उपेक्षा-सी हो गई । मैं उधर से ध्यान हटा कर उन पतंगों को देखने लगा था। मुझे याद है, उस समय भी मेरे मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि इन पतंगों और इन मनुष्यों में अन्तर ही क्या है—दोनों निछावर हो जाते हैं उन पर जिन्हें उन के बलिदान की कुछ परवा नहीं।

छन छन छनन छन !

एक चंचल नूपुर-ध्वनि ने मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह नर्तकी पुतली की भाँति दरी पर थिरक रही थी—पतली-सी, कनक-कामिनी-सी, सुन्दर लता-सी। आज भी जब इस घटना को वर्षों बीत गये हैं, मेरे सामने वह उसी प्रकार थिरक रही है, उसी प्रकार नाच रही है, उसी प्रकार कटाक्ष के तीरों से दर्शकों के दिलों को घायल कर रही है।

यह बहुत देर तक होता रहा, उस का रसीला स्वर भी कई बार आकाश में गूँजा। उस ने गाया भी। स्मरण नहीं, क्या गाया। आज-कल मुजरा होता है तो "या इलाही मिट न जाये दर्दे दिल" या "बालम आये बसो मोरे मन में" की क़िस्म का कोई राग गाया जाता है। तब ज्ञात नहीं, कौन-सा राग प्रचलित था और कौन-सा गाया गया था। पर इतना याद है कि उस का

स्वर अत्यन्त आकर्षक था—मीठा-सा, मद-भरा, नींद-सा ला देने वाला। मैं कई बार ऊँघा, परन्तु जब आँख खुली; उसे गाते, नाचते, मुस्कराते और अपने दीवानों से रुपये लेकर सारंगी के छेद में डालते देखा। फिर न जाने मुझे कब नींद आ गई और जब उठा तब अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था। सिर कुछ दर्द कर रहा था, पर इस की कुछ परवा न करके मैं भागकर मुँडेर पर गया। न वह प्रकाश था, न वह महफ़िल। शामियाना अवश्य था, पर कदाचित् रात के सुख-स्वप्न की स्मृति में आँखें बन्द किये पड़ा था। नाचनेवालियाँ जा चुकी थीं और साजिन्दे भी जाने की तैयारी में व्यस्त थे। मेरी आँखों के सामने रात का दृश्य घूमने लगा, और बार-बार उस नर्तकी की सूरत आँखों के सम्मुख आई, परन्तु इस के साथ ही एक और भी सूरत थी—एक अधेड़ आयु के व्यक्ति की सूरत, जिस के गले में नफ़ीस मलमल का कुर्ता था, कमर में सुन्दर धोती थी, कुर्ते पर बहुमूल्य जाकेट और सिर पर गोल लखनवी तर्ज़ की टोपी और नाचनेवाली की एक एक अदा पर जो रुपये लुटा रहा था।

यह दूलो था और यह समारोह उसने अपने पोते के शुभ जन्म दिन पर किया था।

हाँ, यही दूलो था। जाति का सुनार था, रुपये-पैसे की कमी न थी, पोते के जन्म दिन पर जो ख़ुशी उस ने मनाई थी उस की चर्चा आज भी घर-घर है। उस ने नाच-रङ्ग पर व्यय चाहे अधिक न किया हो। नायिकायें उस की आसामियाँ होने के कारण, उस से रुपये उधार लेने के कारण, उसे इस शुभ दिन पर बधाई देने वैसे ही आ गई हों, पर वे ले इतना गई

थीं कि सौदा करने पर भी न पातीं ।

सुनते हैं उस में ऐब भी थे । वह खाने-पीने वाला आदमी था । 'खाने-पीने वाला'—यह शब्द कटु-सा प्रतीत होता है । पर मेरे विचार में खाने-पीने वाला मनुष्य बिना खाये-पिये जीवन बिता देने वाले से कहीं अधिक अच्छा है । परन्तु खाने-पीने वाले आदमी के लिए बुढ़ापा शायद दूसरे की अपेक्षा अधिक दुखदाई होता है । शुष्क और नीरस प्रकृति के आदमी को किसी प्रकार की चाट तो नहीं होती, उसे कोई ऐब तो नहीं होता और वह किसी प्रकार रो-पीट कर जीवन के दिन तो बिता देता है, लेकिन विलासी मनुष्य—उस की हसरतों की कथा दूसरी ही है ।

परसों की बात है । सुबह नौ बजे होंगे । मैं स्नान आदि से निवृत्त हो कर एक किताब लेकर पढ़ने को बैठा ही था कि मेरे कानों में हलकी-सी, उखड़ी-उखड़ी-सी आवाज़ सुनाई दी, "बाबू, बाबू" ।

मैंने दृष्टि उठाई, सामने एक हाथ में बर्तन और दूसरे में लाठी का सहारा लिए हुए दूलो खड़ा था ।

"क्या बात है, बाबा जी" ? मैंने तनिक उठकर पूछा ।

"ज़रा लोटा भर लस्सी तो ला दो, बाबू !"

आवाज़ में दीनता थी और विवशता । मैं दौड़ कर ऊपर गया और लस्सी का लोटा भर कर उस के घर दे आया । सारा दिन मैं काम न कर सका । उस के लड़के की निष्ठुरता पर मेरा हृदय आठ आठ आँसू रोता रहा । अपने माता पिता के लिए उस से क्या इतना भी नहीं होता, जिन्होंने उस के लिए दुनिया भर के दुख झेले, दुनिया भर की मुसीबतें मोल ली

थी, अपने उन्ही माँ-बाप के लिए क्या उस के ख़ज़ाने में एक घूँट पानी भी नहीं ?

सामने चारपाई पर बुढ़िया लच्छमी बैठी थी। इस पुत्र को पाने के लिए उस ने क्या क्या न किया, कौन-सा जादू न जगाया, कौन-सा मन्त्र न फूँका। मुझे अच्छी तरह स्मरण है, मेरी परदादी उसे अपने घर न आने देती थी। बच्चे वाली स्त्रियाँ उस की छाया तक से दूर भागती थीं। उस ने कुएँ तक सुखा दिए थे वृक्षों को ठूँठ कर दिया था। हमारे पुराने मकान के साथ एक लसूढ़े का वृक्ष था, जिस के कारण हमारी परदादी 'लसूढ़ेवाली' कहलाती थी। किसी टोने टोटकेवाली के कहने पर इस ने इस वृक्ष के नीचे स्नान किया, वह वृक्ष सूख गया। उसी दिन हमारी परदादी ने मुहल्ले भर को इसके भयानक प्रभाव से ख़बरदार कर दिया। वह कहती—इसकी बात मत पूछो, इसने 'पंजपीर कुएँ' में उतर कर स्नान किया था, वह कुआँ सूख गया, 'लेलाँ-वाले' की बावड़ी इस कलमुँही की भेंट चढ़ गई, अब उसमें नाम को भी पानी नहीं, इस पापिन ने मेरा हरा-भरा लसूढ़े का वृक्ष सुखा दिया। यह जिस घर जायगी आग लगायगी।

मोहल्ले की स्त्रियाँ एक बड़ी-बूढ़ी के मुँह से ऐसी बातें सुनकर अपने बच्चों को गोदी में लेकर घरों को भाग जातीं। कहीं लच्छमी की कुदृष्टि उन पर न पड़ जाय। लच्छमी के बच्चे न होते हों, यह बात न थी। होते थे, पर मर जाते थे, बचता कोई न था। कौन-सी ऐसी जगह है, जहाँ किसी ने बताया हो और यह न गई हो। 'इच्छा-कुण्ड' यह गई, 'सकेसर' की यात्रा इसने की, गंगा, जमुना, कृष्णा, कावेरी सब नदियों में इसने, डुबकियाँ लगाईं। सब तीर्थ देख डाले तब जाकर कहीं यह

लड़का बचा । गुरु अर्जुनदेव के गुरद्वारे की परिक्रमा के बाद पैदा हुआ था, गुराँदित्ता नाम रख दिया गया । एक गूजरी घर में रक्खी गई। डर के मारे कोई खुशी न की गई । कहीं मौत को यह प्रसन्नता बुरी न लगे। जब दूलो अपने पोते के जन्म दिन पर खुशी मना रहा था तब कौन जानता है कि वह अपने पुत्र के जन्म दिन का चाव नहीं निकाल रहा था !

वही दूलो और वही लच्छमी आज इसी लड़के के हाथों जीते-जी मौत के मुँह में धकेले जा रहे थे ।

(३)

दूलो का दोष ही क्या था ? यही न कि उसने अपने जिगर के टुकड़े को अपने जीते-जी घर में सर्वे-सर्वा बना दिया था । निश्चय था कि उसका बेटा जिसे उसने सब कुछ सौंप दिया था, उसकी वृद्धावस्था में जब जीवन-संग्राम से थका हुआ उसका शरीर विश्राम का आसरा ढूँढ़ता होगा—उसे सुख देगा। उसका यह विचार कितना निर्मूल था, उसकी यह आशा कितनी भ्रमपूर्ण थी ?

अमरकौर दूलो की पुत्रवधू का नाम था । गुराँदित्ता की पहली पत्नी बहुत पहले मर चुकी थी । बेचारी अच्छी थी, सुन्दर थी और सलीक़ेवाली थी। परन्तु सुनते हैं, परमात्मा को भी अच्छे स्त्री-पुरुषों की अधिक आवश्यकता रहती है। अच्छे लोग ही पहले मरते हैं। दूसरा विवाह हुआ, श्रीमती अमरकौर त शरीफ़ लाईं—चेहरा सुन्दर, हृदय स्याह, मुँह की मीठी, मन की कड़वी, 'बग़ल में छुरी, मुँह पर राम-राम'—ऐसी बनी कि सास-श्वशुर के मन मोह लिये । मीठी मीठी बातें करके सब कुछ पति के नाम करवा लिया। बस, फिर क्या था ? असली

रूप प्रकट होने लगा। सास-बहू में झगड़ा रहने लगा। शनैः-शनैः लच्छमी के हाथ से सब कुछ छिन गया। जो स्वामी था वह भिखारी से भी गया गुज़रा हो गया। दूलो अब बीमार रहने लगा था। दुकान करने की हिम्मत नहीं थी। घर में बैठा रहता था और अपने निरादर पर दिल ही दिल जला करता था। कभी कभी जब दुःख असह्य हो जाता तब दिल की जलन आँखों के रास्ते निकल जाती—इससे अधिक एक निर्बल निस्सहाय बूढ़ा कर ही क्या सकता है?

एक दिन सास-बहू में फिर झगड़ा हो गया। घर में खीर बनी थी, पर उनके लिये न आई। बूढ़ों का स्वभाव बच्चों का-सा हो जाता है, उनकी लालसायें भी बच्चों ऐसी हो जाती हैं। लच्छमी के मुँह से निकल गया—तुम खाना क्या देती हो, बेगार टालती हो। बस इस पर श्रीमती अमरकौर ने तूफ़ान सिर पर उठा लिया—मुझसे रोज़ रोज़ इनके लिए खीर और हलुवा नहीं बनाया जाता; नीयत तो देखो, कितनी ओछी हो गई। बच्चों की तरह मचले पड़ते हैं। गोकल रोता था, ज़रा खीर बना दी। मुझे न ज्ञात था कि ये सत्तर वर्ष के बच्चे भी मचल पड़ेंगे।

गुराँदित्ता पत्नी के इशारों पर नाचते थे। उस दिन से माँ-बाप के लिए पन्द्रह रुपया मासिक लगा दिया। बुढ़िया लच्छमी अपने काँपते हाथों और प्रायः अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती और जली-सड़ी रोटियाँ पकाती, दूलो उन्हीं को खाता और ईश्वर को धन्यवाद देता।

शनैः-शनैः यह रक़म भी घटकर दस पर आ गई, दस से आठ पर। परन्तु अमरकौर को तो ये आठ भी अखरते थे। एक दिन बहाना बनाया गया—"लोग फटकारें देते हैं, कहते

हैं, इससे बूढ़े सास-श्वशुर को भी रोटी नहीं दी जाती। मैं अब इन्हें अपने हाथ से रोटी खिलाऊँगी।" उस दिन से रुपये बन्द कर दिये गये। अमरकौर स्वयं खाना बनाने लगी। घर में क्या बना है, क्या नहीं, इस बात का उन्हें पता न लग जाय, इस विचार से उनका स्थान भी तीसरी मंज़िल के बदले बीच की मंज़िल में कर दिया गया। रसोई ऊपरी मंज़िल में थी। वहाँ से गिने हुए फुलके और तुला हुआ सालन आने लगा। जिस दिन सालन तनिक सुस्वादु होता उस दिन फिर घर में झगड़ा हो जाता। वे प्रायः रोटी और माँगते और अमरकौर कहती—मुझसे अब बार बार चूल्हा नहीं जलाया जाता। ये तो चाहते हैं कि सारा सारा दिन गरमी में चूल्हे के पास बैठी रहूँ, बीमार हो जाऊँ और मर जाऊँ। मुझसे यह न होगा। इनका पेट है या कुआँ। दस दस रोटियाँ खा जाते हैं फिर भी भरने में नहीं आता। इस रोज़ रोज़ की दाँताकिटकिट से तंग आकर गुराँदित्ता ने फिर रुपये देना शुरू कर दिया। अब उनकी संख्या घट कर तीन हो गई थी और उनके रहने का स्थान भी निचली मंज़िल की दो अँधेरी कोठरियाँ। दूलो ने यह फ़ैसला सुना तब उसके सीने को चीरकर एक दीर्घ निःश्वास निकल गया "तीन रुपये मासिक"! गुराँदित्ता ने कह दिया, मेरा कारोबार घट गया है, मैं इससे अधिक दे नहीं सकता। दूलो ने लम्बी साँस ली और चुप हो रहा। उसी दिन से दोनों पति-पत्नि बाहर मुहल्ले में सोने लगे।

(४)

मैं अपने भाई के लिए ओषधि लाने हकीम की दुकान पर जा रहा था कि साथ के मुहल्ले में कुछ शोर सुनाई दिया। मेरा रास्ता उधर से ही होकर जाता था। देखा बूढ़ी बीमा

लच्छमी मध्य में खड़ी है और कुछ स्त्रियाँ उसे घेरे हुए हैं। धरती पर एक कपड़ा बिछा है, जिस पर कुछ आटा पड़ा है। मुझे समझते देर न लगी। कदाचित् अन्तिम झगड़े ने उन्हें सर्वथा असहाय बना दिया था। कल फिर झगड़ा हुआ था। वे तीन दिन से भूखे थे, खाने को मुट्ठी भर आटा भी न था। अमरकौर ने कुछ देने से इनकार कर दिया। लज्जा पाँव की ज़ंजीर बनी हुई थी, पर भूख बेचैन किये देती थी। पेट की आग ने लज्जा की ज़ंजीरों को पिघला दिया। लच्छमी लाठी टेकते टेकते पास के मोहल्ले में अपने बिरादरी वालों के यहाँ गई। पर बिरादरी हो अथवा रिश्तेदारी, घर से ठुकराये जाने वाले की कोई सहायता नहीं करता। उन्होंने इसका उपहास किया। मध्य में एक कपड़ा बिछा दिया और एक लज्जावान् की लज्जा का परदा उठाया जाने लगा। स्वार्थी दुनिया—किसी की पत उतर जाये इसे उसमें भी आनन्द मिलता है। एक मकान की दीवार के साथ लगी लच्छमी खड़ी थी—वही जिसके पाँवों में कभी लक्ष्मी खेला करती थी। आज यों अपनी ही बिरादरी के हाथों अपमानित हो रही थी। व्यङ्ग के बाणों से उसका कलेजा छिद रहा था, उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था, उसे स्वप्न में भी इस कौतुक के देखने की आशा न थी। वह चुप खड़ी अपनी दुर्दशा देख रही थी—देख कहाँ रही थी, उसकी आँखें तो बन्द थीं, केवल दो बड़े बड़े आँसू उसके पिचके हुये गालों पर ढुलक आये थे। वही दुनिया की इस क्रूरता को आर्द्र नयनों से देख रहे थे।

एक स्त्री ने जो नाते में लच्छमी की कुछ लगती भी थी, कारूँ की समाधि पर लात मारते हुए एक छोटी-सी कटोरी में

आटा लाकर बिछे हुए कपड़े पर डाल दिया और नाक-भौं सिकोड़ कर बोली—"निर्लज्ज को शरम भी नहीं आती । घाट किनारे आ लगी है, पर मन की लालसा नहीं गई । यों अपनी और अपने बेटे की मिट्टी पलीद कराने से तो कहीं अच्छा था कि कुछ खाकर सो रहती।"

लच्छमी से और न सहा गया। तीन दिन का उपवास, बूढ़ा निर्बल शरीर, एक बार काँपी और धड़ाम से धरती पर आ रही । मैं दौड़ कर गया, उसे उठाया, कपड़े से हवा की। सौभाग्यवश लाला निहालचन्द भी इधर से जा रहे थे । इसी मोहल्ले में रहते हैं, पर उनकी उदारता की धाक नगर भर में है। उन्हें सब कुछ समझते देर न लगी । अपनी सम्पन्नता का तनिक भी विचार न कर वे मेरे पास आ बैठे । लच्छमी को होश आ गया तब वे उसकी लाठी पकड़कर उसके घर छोड़ आये और मुझे उन्होंने एक आटे की बोरी और दाल उसके घर पहुँचा देने का आदेश दिया।

× × × ×

चित्रपट के चित्रों की भाँति ये सारे चित्र मेरी आँखों के सामने फिर गये । मेरी पत्नी ने मेरे कन्धे को छुआ। वह गाय दुहकर ऊपर जाने को तैयार थी । बच्चा रो रहा था, बेहाल हो रहा था। उसने दूध के बर्तन को फ़र्श पर रखकर बच्चे को मेरे हाथों से छीन लिया। "नौज तुम्हें कोई किसी काम को कहे"—उसने रोष से कहा। वह बच्चे को छाती से लगा रही थी। चूम रही थी। और मैं सोचता था, यह प्रेम, यह प्यार किसलिए ?

मरुस्थल

मौन और गम्भीर ज्ञान भी अपने दिल की दुनिया में इतने तूफ़ान छिपाये हुए होगी, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। एक ऐसे स्कूल के सञ्चालक की हैसियत से, जिस में हर उम्र की स्त्रियाँ पढ़ती थीं, मुझे नारी-हृदय की गहराइयों में पैठने का, पैठकर उसमें उठनेवाली हलचलों को जानने का काफ़ी मौका मिला है। पर अपने सारे अनुभवों के साथ मैं अन्त तक भी ज्ञान के दिल को न पहचान सका।

मेरे पास जो लड़कियाँ या विधवायें पढ़ने के हेतु आती थीं, मुझे सदैव अपने दुःख-दर्द का साथी बना लेती थीं, अपने घरेलू मामलों में मेरी राय पूछती थीं, मुझ से परामर्श लेती थीं और मैं भी अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी कठिनाइयों को हल करने का प्रयास करता था। चञ्चल लड़कियाँ अपने स्वभाव से विवश होती हैं, उनसे किसी मामले में चुप नहीं रहा जाता और कोई ऐसी बात, जिससे उनके दिल को दुःख पहुँचा हो,

वे अपने दिल में नहीं रख सकतीं और दुखी औरतें—वे प्रायः किसी ऐसे हमदर्द की तलाश में रहती हैं जिससे वह अपना गम बटा सकें। ऐसी स्त्रियाँ, मेरे सामने अपने दुःख-दर्द ऐसे खोल देतीं, जैसे मैं उनका सगा होऊँ। लेकिन ज्ञान इस नियम का अपवाद थी। उसकी जबान से मैंने कभी कोई बात नहीं सुनी। कोई शिकायत, कोई गिला मेरे सामने उसकी ज़बान पर न आया। मुझे न मालूम हुआ, वह अपनी हालत पर सन्तुष्ट है अथवा असन्तुष्ट ! सुखी है वा दुःखी ! हाँ, अपने तौर पर मैंने उसके सम्बन्ध में काफ़ी जानकारी प्राप्त कर ली थी, और इसीलिये औरों की अपेक्षा उससे मुझे सहानुभूति भी ज्यादा थी।

× × × ×

ज्ञान निर्धन माँ-बाप की बेटी थी, किन्तु इकलौती होने के कारण लाड़ली थी। माँ ने नाज़ से पाला था और बाप ने भी मरते दम तक आँखों की पुतली बना कर रखा था; किन्तु उसकी मृत्यु के बाद घर की दशा और भी बिगड़ गयी थी और इसीलिए ज्ञान में वह शोखी और चञ्चलता न आयी, जो अमीरों की लाड़-चाव में पली हुई लड़कियों का गहना बन जाती है। उसका विवाह भी अच्छी जगह हुआ था। उसकी माँ ने अपनी ओर से अच्छा घर ढूँढ़ा था, लेकिन इसे ज्ञान का दुर्भाग्य ही समझिये कि उसे सुख नसीब न हुआ। संसार में सुख यदि मनुष्य की देख-भाल पर निर्भर हो, तो कोई दुखी ही क्यों हो। कौन जानता है कि लाख सोच-विचार के बाद हम जिस चीज़ को अपने सुख के लिये अपनाते हैं, वही हमारे दुख का कारण न बन जायेगी। ज्ञान का पति देवदत्त चाहे बाहर से कितना

भी भोला-भाला, दयानतदार और ऊँचे ख़याल का आदमी क्यों न प्रतीत होता हो, पर अन्दर से परले सिरे का विषयासक्त, दुराचारी और लम्पट था। उसकी सौम्य मूर्ति, घुटी हुई पंडितों जैसी पगड़ी और मीठी-मीठी बातें वास्तव में शिकार के लिये दाने का काम देती थीं और इस मामले में वह सदैव सफल रहता था। ज्ञान को बहुत जल्द इस बात का अनुभव हो गया, किन्तु वह चुप रही। अपने पति की इच्छाओं में अपनी इच्छाओं को बलिदान करना उसने खूब सीख लिया था। और फिर वह निर्धन ग़रीब विधवा की बेटी है, इस बात को वह न भूली थी।

एक औरत थी कृष्णप्यारी। थी तो विधवा, पर बनाव-शृङ्गार में सुहागिनों को भी मात करती थी। उस का रङ्ग-ढङ्ग, चाल-ढाल, वेष-भूषा देख कर कौन कह सकता था कि उस के जीवन की ज्योति बुझ गयी है, उस का संसार सूना हो गय है। इस के विपरीत जीवन की समस्त उच्छृङ्खलता, समस्त मस्ती उस के रोम रोम से टपकती थी। बोलती थी तो ओठों को मुसकराहट की हद तक ले जाती थी, चलती थी तो नज़ाकत को शरमा देती थी, देखती थी तो जादू-सा कर देती थी। आयु भी कोई बहुत न थी, यही कोई बाईस-तेईस वर्ष। देवदत्त उसी का शैदाई था।

कृष्णप्यारी तक पहुँच मुश्किल हो, यह बात न थी। पर देवदत्त चाहता था—पारसाई और नेकनामी पर धब्बा भी न आवे और काम भी बन जाये। टट्टी की ओट में शिकार खेलना उसे अधिक पसन्द था। आख़िर उस ने तरकीब सोच निकाली। क्यों न ज्ञान द्वारा यह काम निकाला जाय। कृष्णप्यारी एक पाठशाला में अध्यापिका थी। उस ने उसे ज्ञान को पढ़ाने के

लिए रखने की सोची। वह ज्ञान से सदैव पढ़ने के लिए ज़ोर दिया करता था। चालाक बीमा-एजेण्ट के साथ यदि एक शिक्षित पत्नी भी हो, तो फिर क्या चाहिए। जिस दावत पर आमन्त्रित हो कर जायेगा, दो-एक पालसियाँ ले ही आयेगा। ज्ञान को भी उस ने समझाने की कोशिश की थी, किन्तु शायद उस के मस्तिष्क में यह बात न आयी थी या शायद उसे लज्जा-शर्म को तज कर आबरूबाखताओं की तरह दावतों पर जाना और हर ऐरे-गैरे की वासनापूर्ण निगाहों का शिकार बनना पसन्द न था, इस लिए वह इस बात पर राज़ी न हुई थी, इस के अतिरिक्त पाठशाला में पढ़ने के निमित्त जाते हुए भी उसे शर्म आती थी, लेकिन जब देवदत्त का अनुरोध बढ़ गया और उस ने कहा कि पढ़ने के हेतु तुम्हें कहीं जाना न पड़ेगा, मैं तुम्हारे पढ़ाने के लिए मिस्ट्रैस रख दूँगा, तो वह मान गयी।

और फिर कृष्णप्यारी आयी। अपनी चञ्चलता और बेबाकी के साथ, मन्त्र जगाती हुई, जादू फूँकती हुई। देवदत्त भी उस समय घर रहने लगा। ज्ञान सब कुछ समझ गयी। वह अपने पति की आदत जानती थी। एक बार पहले भी उस के पति ने उस को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन बनाया था। एक पड़ोसिन से उसकी आँख लड़ गयी थी। उस ने कई तरह की युक्तियों से, कई तरह की दलीलों से ज्ञान को उस से परिचय प्राप्त करने, उस से राह-रस्म बढ़ाने के लिये बाधित किया था। ज्ञान चुपचाप वैसे ही करती रही थी। पड़ोसिन से राह-रस्म उस ने बढ़ा ली थी; उसे अपने घर बुलाना उस ने शुरू कर दिया था। दूसरी स्त्रियों की तरह ज्ञान न थी, अपने पति की प्रसन्नता के लिए वह अपना सब

कुछ छोड़ने को तैयार हो जाती थी, और जब उस के सामने उसकी पड़ोसिन घर आती रही और उस के पति से हँसती-बोलती रही, तो उस ने सब कुछ देख कर भी नहीं देखा, सब कुछ जानकर भी नहीं जाना, और सब कुछ समझ कर भी नहीं समझा। उस ने कभी अपनी पड़ोसिन से झगड़ा नहीं किया, उसे बुरा-भला नहीं कहा, अपने पति से जिक्र तक नहीं किया, अपने दिल के भावों को दिल ही में छिपाकर वह अपने भाग्य पर सन्तोष करके बैठी रही।

× × ×

कृष्णप्यारी के सिलसिले में भी वही हुआ, जो रूप और प्रेम की दुनिया में पहले कई बार हो चुका है।

आँखें लड़ीं, मुसकानों का लेन-देन हुआ, बातों की राह निकाली गयी और ज्ञान की शिक्षा ताक पर धरी रह गयी। किन्तु देवदत्त इस बार अपने चुनाव में चूक गया। कृष्णप्यारी काफ़ी बदनाम थी। उन के घर उसका आना ही उस के लिए ज़हर बन गया। पास-पड़ोस में तरह-तरह की बातें होने लगीं। ज्ञान के कान पड़ोसिनों के ताने सुनते-सुनते थक गये। पति से झगड़ना उसे पसन्द न था और अङ्गारों पर दिन-रात रहना अब उस के लिए असह्य हो गया। दिन-रात सोचते-सोचते वह थक गयी, अन्दर ही अन्दर घुलते-घुलते उसका शरीर दुर्बल होता जा रहा था। आख़िर उस ने इन सब बातों का एक हल ढूँढ़ निकाला। वह एक दिन चुपचाप मैके चली आयी।

मैके में उस के दुर्भाग्य की बात उस से भी पहले पहुँच चुकी थी। दिन-भर तो माँ चुप रही। इतने दिन बाद लड़की आयी थी, आते ही उस के दुख की बात करना माँ ने उचित

न समझा, पर रात को जब दोनों सोने लगीं, तो माँ ने उसका सिर अपनी गोद में लेकर पूछा—ज्ञानो, यह मैं कुछ दिनों से क्या सुन रही हूँ।

ज्ञान चुप रही। माँ ने फिर कहा—"यह देवदत्त और किसी उस्तादिनी के सम्बन्ध में, मुझे न बतायेगी, अपनी माँ को अपने दुख से भिज्ञ न करेगी।"

ज्ञान के मौन का बाँध टूट गया। रो कर उसने अपने दुख की सारी कहानी माँ से कह दी। रोते हुए माँ ने अपनी बदकिस्मत लड़की को अपनी वृद्ध भुजाओं में भींच लिया। ज्ञान ने महसूस किया, जैसे वह कुछ हल्की हो गयी है, जैसे उसके दिल में धधकती हुई इतने दिनों की आग ठण्डी पड़ गयी है।

× × ×

बहुत दिनों के बाद ज्ञान आराम से सोयी। लेकिन माँ को नींद न आयी। उसने बड़ी मुसीबतें देखी थीं, बहुत कुछ सहा था, पालपोस कर बड़े किये अपने लड़कों को एक-एक करके मरते देखा था। धन और सम्पत्ति को नष्ट होते देखा था, उसके फिराक में अपने पति को पागल होकर, जर्द और पीला होकर अपनी सुध-बुध भुला कर मरते देखा था; पर इन सब मुसीबतों में, इन सब विपत्तियों में वह चट्टान की भाँति खड़ी रही थी, वह पागल न हो गयी थी, मर न गयी थी क्यों?—केवल अपने पति की अन्तिम निशानी, अपने कुल की आखरी शाखा को जीवित रखने के लिये। उसने दुख उठाये, आपत्तियाँ झेलीं, लेकिन ज्ञान को यथाशक्ति आराम पहुँचाया और देवदत्त को वर की हैसियत में उसके लिए ढूँढ़ कर वह सुखी थी,

सोचती थी, अब किसी दिन चुपके से यह जीवन-लीला समाप्त हो जाय, तो वह अपने साथी से जा मिले, जो न जाने कब से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

लेकिन यह दुर्भाग्य। माँ सिहर उठी। अपनी लाड़-चाव से पाली हुई बच्ची का जर्द चेहरा उसके सामने फिरता रहा। सारी रात वह सोचती रही, क्या करे ? उसके पास धन नहीं, पैसा नहीं, वह ग़रीब है, निर्धन है, साधनहीन है—तो क्या अपनी भोलीभाली लड़की को उस पिशाच के हाथों टुकड़े टुकड़े होने के लिए छोड़ दे। न, वह ऐसा न कर सकेगी, मरते दम तक ऐसा न करेगी। सुबह उठी तो उसके चेहरे पर दृढ़ सङ्कल्प के आसार थे, उसने फ़ैसला कर लिया था कि वह ज्ञान को उसके पति के पास कभी न रहने देगी।

ज्ञान के चले आने से देवदत्त को भी चिन्ता पैदा हो गयी। अब कृष्णप्यारी को बुलाने के लिये कोई बहाना न था, एक-दो बार वह आयी तो मुहल्ले में शोर मच गया। बहू-बेटियों के दरम्यान पाप का यह नाटक खेलने पर पड़ोसियों ने उसको आड़े हाथों लिया। एक-एक बात की बीस-बीस बातें बनीं, बदनामी हुई, अपमान भी हुआ और आखिर सोचसाच कर देवदत्त ने ज्ञान को मना लाने का फ़ैसला किया। एक दिन वह ज्ञान को लेने आया; किन्तु मुँह लटकाये हुए वापस गया। ज्ञान की माँ ने उसे बहुत बुरी-भली सुनायी और कहा कि वह अपनी लड़की को उस-जैसे चरित्रहीन के घर न भेजेगी। ज्ञान रोयी भी, जाने के लिए तैयार भी हुई; पर माँ ने उसे रोक दिया, कहा—मुझे जरा-सा विष घोल कर पिला जा, फिर चाहे चली जा, मुझ से नित तिल-तिल करके नहीं जला.

जाता। और उस दिन से ज्ञान का वैवाहिक जीवन प्रायः समाप्त हो गया।

इन्हीं दिनों में मैंने विधवाओं के लिए एक पाठशाला खोली थी, किन्तु चूँकि उस ओर कोई और पाठशाला न थी, इसलिए लड़कियाँ भी वहाँ पढ़ने के लिए आ जाती थीं। मेरी पत्नी पुष्पा इस काम में मेरा हाथ बटाती। वह स्वयं भी मैट्रिक थी और सच बात तो यह है कि मैंने यह काम उस के अनुरोध पर ही आरम्भ किया था। नौकरी तो आज-कल जैसी हालत है, किसी से छिपी नहीं और एक बार जब रिट्रेञ्चमैंट (नौकरियों में कमी की सरकारी नीति) की लपेट में आया, तो फिर लाख सिर पटकने पर भी कहीं दूसरी जगह काम न पा सका। मेरा सौभाग्य था कि पत्नी सुशिक्षित थी, समझदार थी, नहीं तो यदि कोई अपढ़ पल्ले पड़ जाती, तो मेरा बोझ हलका होने के बदले भारी हो जाता। मैं ने उस के कहने के अनुसार पाठशाला खोल दी, चल भी वह खूब निकली। उन दिनों हमारा जीवन उल्लास का एक न समाप्त होने वाला सङ्गीत था, काम खूब करता था, लेकिन कभी थकावट महसूस न होती थी। मैंने जो रास्ता पकड़ा था वह कुछ ख़तरनाक तो था, ज़रा चूक जाने का मतलब अथाह गहराइयों में जा गिरना था, अपमान और बदनामी का सामना करना था; किन्तु पुष्पा के होते हुए मुझे साहस था और मुझे निश्चय था कि मैं इस फिसलने मार्ग पर भी निर्विकार रूप से चल सकूँगा। पुष्पा भी मेरे साथ पढ़ाती थी और स्वयं पढ़ती भी थी, बी० ए० करने का उसने इरादा कर रखा था। उसके होते हुए मुझे किसी बात का डर न था। पाठशाला दिनों

ही में चल निकली थी और हमने मिडल और मैट्रिक की शिक्षा तक का प्रबन्ध कर दिया था।

ज्ञान की माँ पड़ोस ही में रहती थी, उसने मुझे और पुष्पा को सब बातें बता दी थीं। पुष्पा ने ही सलाह दी थी कि ज्ञान मिडल पास करके जे० वी० कर ले और उसी दिन से ज्ञान हमारे स्कूल में पढ़ने लगी थी। मैं उसके स्वभाव को देखकर हैरान रह गया था। वह जिस जगह बैठती थी, बैठी रहती थी; जिस जगह खड़ी होती थी, खड़ी रहती थी; बहुत ऊँचे बात करते मैंने कभी उसे न सुना, आयु यद्यपि उसकी बहुत न थी, तो भी लड़कियों की भाँति शोर मचाते मैंने उसे न देखा—सौम्य और गम्भीर, यह थी ज्ञान। मेरे सामने बिलकुल न बोलती, न मुझ से कोई बात ही पूछती, यदि कुछ कहना भी होता, तो पुष्पा से जा कहती। इस लम्बे अरसे में उसने कोई भी सहेली न बनायी, न ही विधवाओं में और न कुँवारियों में, शायद इसलिए कि वह इन दोनों में से ही न थी।

तीन वर्ष में ही उसने मिडल पास कर लिया और उसकी माँ की ग़रीबी का खयाल करके, अपने स्कूल ही में मैंने उसे १० रुपये पर पहली-दूसरी श्रेणी को पढ़ाने का काम दे दिया।

इस बीच में मुझे ऐसा महसूस होने लगा, जैसे ज्ञान भीतर ही भीतर कुछ दुखी रहती है। यद्यपि शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी उसकी गम्भीरता वैसे ही बनी थी, पर कुछ अरसे से उस पर अन्तर-वेदना की एक हलकी-सी रेखा भी प्रतिबिम्बित रहने लगी थी और तब मैंने समझा था—शायद इसे पति के वियोग का दुख है, शायद माँ की ज़िद उसे अच्छी नहीं लगी, शायद वह अपने पति के पास जाने को लालायित है। अपना

यह विचार मैंने अपनी पत्नी के आगे भी रखा। उसने कहा—यद्यपि इस मामले में ज्ञान से मेरी कभी भी बात नहीं हुई, पर फिर भी मैं आप से कहने वाली थी, कि उसकी माँ को और देवदत्त को समझा-बुझाकर दोनों का वैमनस्य दूर करा दिया जाय। यदि यह इस तरह यहाँ घुलती रहेगी, तो कदाचित् ज्यादा देर तक न जी सकेगी।

× × × ×

सप्ताह के छः दिन तो हमें सिर उठाने का अवकाश न होता था, हाँ इतवार अपना था और कहीं जाना-आना, किसी से मिलना-मिलाना, उसी दिन होता था। जिस दिन मैंने अपनी पत्नी से परामर्श किया था, उसी दिन से मैंने ज्ञान के पति से मिलने की ठान ली थी; पर चूँकि उस दिन अभी शायद सोम या मङ्गल था, इसलिए शीघ्र ही इस काम को सर-अञ्जाम न दे सका। इस बीच में जितनी बार भी मैंने ज्ञान के चेहरे को देखा, मेरा सन्देह पक्का होता गया।

इतवार के दिन मैं देवदत्त से मिला। हम दोनों में बहुत देर तक बातें होती रहीं। वह अपने कृत्य पर दुखी था। जवानी की पतवार उसके जीवन की नाव को गंदले पानी में ले गयी थी, उस पर छींटे भी पड़ गये; पर वह उन्हें धो डालने के लिए तैयार था। ज्ञान की ओर से उसके दिल में कुछ बहुत रञ्ज न था और जब मैंने ज्ञान की व्यथा का मार्मिक चित्र खींचा, तो यह रञ्ज और भी दूर हो गया और उसने मुझे यहाँ तक कहा—मास्टरजी, वास्तव में मैंने ऐसा महसूस किया है कि यदि मैंने किसी से सच्ची मुहब्बत की है, तो वह ज्ञान ही है, वरना जो मैं करता रहा हूँ, उसे आप अन्धी वासना तो कह सकते

है—प्रेम का उज्ज्वल नाम नहीं दे सकते। यह सब तो था; किन्तु माँ की ओर से उसके हृदय में गहरे घाव थे, उसके अपमान से वह जल उठा था और अपने स्वाभिमान को अपनी सास के आगे झुकाकर वह ज्ञान को न लाना चाहता था।

मैंने उसे यक़ीन दिलाया कि उसे अपने अभिमान को झुकाना न पड़ेगा और उससे छुट्टी लेकर मैं ज्ञान की माँ के घर पहुँचा। वह देवदत्त के सम्बन्ध की बात तक करने को तैयार न थी। मैंने उसे सब ऊँच-नीच समझाया, कहा, लड़की जवान है और समाज कठोर। लेकिन वह न मानी। आख़िर मैंने उसका ध्यान ज्ञान की शारीरिक दशा की ओर आकर्षित किया। जब मैंने कहा कि यदि वह इसी तरह ग़म खाती रही, तो बहुत दिन जीवित न रह सकेगी, अन्दर ही अन्दर घुलते-घुलते उसका रङ्ग कपास के फूल की तरह ज़र्द हो गया है, उसकी आँखों के गिर्द गढ़े बन गये हैं और दिन-प्रतिदिन उसकी देह दुर्बल और क्षीण हो रही है, क्या तुम अपने हठ पर अपनी लड़की की बलि दे दोगी? तब ज्ञान की माँ मान गयी। फिर मैंने दोनों को एक दिन अपने घर आमन्त्रित किया और दोनों में सुलह करा दी। पर ज्ञान की मां ज्ञान को उसी दिन भेजने के लिए राज़ी न हुई। उसने कहा—चार साल मेरी लड़की मेरे घर रही, मैं ग़रीब ही सही, पर उसे कुछ दिये-दिलाये बिना कैसे बिदा कर सकती हूँ।

× × × ×

उसी दिन से ज्ञान ने पाठशाला में आना छोड़ दिया। इस ख़याल से कि उसकी माँ को रुपयों की आवश्यकता होगी, मैंने उसका सब वेतन उसके घर भेज दिया। इन कुछ दिनों में ज्ञान, मेरे और मेरी पत्नी के मध्य में बातचीत का विषय रही थी।

हम प्रसन्न थे कि हमने एक लड़की को घुल-घुलकर खत्म होने से बचा लिया है, उसके उदास दिनों की दुनिया बदल दी है।

उस दिन रविवार था, ज्ञान की विदाई होनी थी, स्कूल में भी छुट्टी थी। ज्ञान की माँ ने मुझे और पुष्पा दोनों को बुला रखा था। सुबह स्नानादि से निवृत्त होकर हम जाने के लिए तैयार हो रहे थे, पुष्पा ने 'शगन' के तौर पर कुछ कूजे और रुपये रूमाल में बाँध लिये थे, मैं शायद सीढ़ियों में उतर गया था कि हमें किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। देखा तो ज्ञान की माँ सिर पीटती चढ़ी आ रही है, उसे तन-बदन का होश न था। मेरा दिल किसी दुर्घटना के ख्याल से बैठ गया, पुष्पा भी आश्चर्यान्वित-सी दहलीज में आ खड़ी हुई।

"क्या बात है ?"—मैंने जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरकर उससे पूछा।

"ज्ञान ने विष खा लिया है।"

मेरे पाँव-तले से धरती निकली हुई प्रतीत हुई, पुष्पा शायद चीख उठी।

"मर गयी ?"—मैंने पूछा।

"तड़प रही है, आप जरा जल्दी चलें......"

मैं एक क्षण भी नहीं रुका। मेरे पास ही डाक्टर अविनाशचन्द्र की दुकान थी, भागा-भागा उनके यहाँ गया, वह किसी रोगी को देख रहे थे, उनका हाथ पकड़कर जैसे खींचता हुआ-सा मैं उन्हें ले आया। बाजार में एक ताँगा जा रहा था, उसी पर हम बैठ गये। घर तो पास ही था, दो मिनट में पहुँच गये; किन्तु उसने शायद संखिया खा लिया था और उसकी नस-नस में सरायत कर चुका था। हमारे पहुँचने के कुछ ही देर बाद

उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

मैंने डाक्टर साहब को फ़ीस दी, लेकिन उन्होंने लेने से इनकार कर दिया और उसी ताँगे पर वापस चले गये। इस बीच में ज्ञान की माँ भी रोती-पीटती पहुँच गयी।

मैंने पूछा—"आख़िर बात क्या हुई ?"

रोते हुए माँ ने कहा—कल तक भली-चङ्गी थी, सुबह उस ने एक बार कहा—"मैं अब नहीं जाना चाहती।" मैंने कहा—"दुर पगली, यह अब कैसे हो सकता है ?" इसके बाद मैं सब्ज़ी इत्यादि लेने बाज़ार चली गयी, वापस आयी तो इसे तड़पते हुए देखा, फ़र्श पर एक पुड़िया पड़ी थी और यह पुर्ज़ा, जो शायद उसने जल्दी में लिखा था। तड़पते हुए उसने कहा था—'यह भाई साहब को दे देना।'

मैंने बेताबी से कागज़ का पुर्ज़ा लेकर पढ़ा। दो पंक्तियाँ लिखी हुई थीं।

भाई साहब,

आपके वैवाहिक जीवन की अपने जीवन से तुलना करती हूँ तो उसे एक मरुस्थल पाती हूँ—नीरव और सुनसान! फिर इस वीराने में सारी आयु गुज़ारने से लाभ ? इसलिये विदा, क्षमा।

ज्ञान।

मैं भौंचका-सा खड़ा रहा, इन तीन वर्षों में ज्ञान के मौन और गाम्भीर्य का जो रहस्य न खुल पाया था, वह आज खुल गया। अपने आपको मनोविज्ञान का बड़ा माहिर समझता था, इतनी बात न जान सका।

शाम को देवदत्त ज्ञान को लेने आ रहा था। गली में उसे उसकी अर्थी मिली।

गोखरू

फिटकरी, शोरे और नमक के पानी में घुले, कमरे के अँधेरे में जगमगाते, पीले, सुनहरे गोखरू देखते-देखते मलावी की आँखों में आँसू भर आये। निमिष-मात्र के लिए उसके सामने एक चित्र घूम गया—उसका अपना ही चित्र—उन दिनों का, जब जीवन में सब कुछ अच्छा लगता था। भाई से लड़ाई-झगड़ा, पिता का क्रोध से झुँझलाकर गालियाँ देना और खीज-कर माँ का पीट बैठना—सब ही भला मालूम देता था। वसन्त की अपेक्षाकृत लम्बी दुपहरी, जब अपनी स्निग्ध, सुनहरी धूप से सपनों का संसार बसा देती थी और अपने बड़े खुले आँगन में त्रिञ्जन[1] के गीत गाते-गाते वह किसी ऐसी ही सपनों की दुनिया में खो जाती थी।

एक लम्बी साँस छोड़कर मलावी ने अपनी आँखों को मल डाला। यौवन के स्वर्ण-प्रभात की अपनी आकृति देखते-देखते वर्तमान के कङ्काल का ध्यान आ जाने से उसकी आँखें

---

१. स्त्रियों जब इकट्ठी बैठ कर चरखा कातती हैं तो पंजाब में उसे त्रिञ्जन कहते हैं।

भर आयी थीं। गोखरू उसने फिर डिब्बे में रख दिये; पर डिब्बे को वह बन्द न कर सकी। क्षणिक आवेश के वश एक गोखरू उठाकर उसने अपनी कलाई में डालना चाहा; पर वह सख्त था—१६ तोले सोने के भारी गोखरू—उसके हाथों की हड्डियाँ जैसे अब उसके लिए दीवारें बन गयी थीं। चुपचाप उसने फिर उसे डिब्बे में रख दिया और कुछ क्षण मन्त्रमुग्ध-सी वह उन दो सुन्दर गोखरुओं को देखती रही। एक दिन वे उसकी सोने ऐसी कलाइयों पर खूब सुन्दर लगे थे। तब उसके अङ्ग भरे हुए थे, हड्डियों के स्थान पर मांसल भुजायें थीं और गालों के गढ़ों में गुलाब हँसा करते थे।

बाहर छोटी-छोटी लड़कियाँ ढोलक पर 'माहिया'२ गा रही थीं। उसकी आँखों के सामने फिर गया, किस तरह उसके कमरे में भी एक दिन ढोलक रख दी गयी थी, और फिर किस तरह चाँदनी रातों में उनके चौड़े विशाल आँगन में जामुन के वृक्ष की छिदरी छाया के नीचे गाँव-भर की नवयुवतियाँ और नववधुएँ इकट्ठी हुई थीं, और किस तरह उन्होंने 'माही', 'राँझा', 'पुन्नू' ३ के गीत गाये थे और किस तरह गाँव की बड़ी-बूढ़ियाँ भी उनके द्वारा अतीत में पहुँचकर उनके स्वरमें स्वर मिला देती थीं।

फिर एक दिन तेल, हल्दी और केसर से मिले हुए बेसन के उबटन से मल-मल कर उसे नहलाया गया था और जब उसकी देह कुन्दन-सी दमक उठी थी, तब विवाह का लाल जोड़ा उसे पहनाया गया था। उसकी कलाइयों में मौली के तार में पिरोये हुए कलीरे बाँधे गये थे और तब माँ ने उसे गहने

२. पञ्जाब का प्रसिद्ध गीत।

३ पंजाब के अमर प्रेमी।

पहनाये थे। उन्हीं में से ये भारी गोखरू भी थे।

मलावी ने आँखें गोखरुओं से हटा लीं। कमरे की दायीं दीवार के साथ जरा और अँधेरे में ट्रङ्कों पर एक पुराना लकड़ी का लाल डिब्बा उपेक्षित-सा पड़ा था। रङ्ग उसका कई जगह से उतर गया था और उस पर गर्द की गहरी तह चढ़ गयी थी। मलावी की दृष्टि उसी पुराने डिब्बे पर जा पड़ी, फिर उसने अपने शरीर पर निगाह डाली और उस के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। तभी एक असह्य ईर्षा के बस होकर उसने एक गोखरू उठाया, दोनों हाथों में लेकर और तनिक खुला करके उसे डाल लिया। उसकी हड्डी-ऐसी कलाई पर वह कोहनी तक चला गया। तब दूसरा उसने दूसरी कलाई में डाल लिया। वह भी कोहनी तक चला गया, किन्तु उसे दुःख नहीं हुआ। इस अपने चिरपरिचित गहने को सदैव के लिए अलग करते समय एक बार पहन कर वह कृतकृत्य हुई। तभी दरवाजा खुला और विवाह के लाल जोड़े में आवृत यौवन, उल्लास तथा प्रसन्नता की तसवीर बनी उसकी लड़की मंसा कमरे में दाखिल हुई—मलावी ने दोनों हाथ दुपट्टे के आँचल से छिपा लिये। उसका चेहरा पीला पड़ गया, पर कमरे के अँधेरे में उसकी लड़की ने इस परिवर्तन को नहीं देखा और अपनी मीठी सुरीली आवाज में इतना ही कहा—"बाबू जी बुला रहे हैं!"

"चल मैं आयी"—हकलाते हुए मलावी ने कहा।

लड़की चली गयी। मलावी ने उसे जाते हुए देखा—उस के यौवन-प्रभात का दमकता हुआ चित्र। एक दीर्घ निश्वास को निकल पड़ने से बरबस रोक कर उसने गोखरू उतारे और उन्हें उन के उस नये डिब्बे में रख दिया, जिस की मखमल

का रङ्ग गहरा लाल था और जिस की पीतल की कुंडी भी सुनहरी दिखाई देती थी और अँधेरे में ट्रङ्कों पर उपेक्षित से पड़े उस पुराने डिब्बे की ओर जान-बूझ कर देखे बिना मलावी नये डिब्बे को लिये हुए कमरे से निकल आई।

❀ ❀ ❀

दरवाज़े पर शहनाई अपनी तीखी, हृदय को भेद देने वाली आवाज़ में कोई जुदाई का गीत गा रही थी। घर के बाहर भङ्गियों तथा भङ्गिनों का हजूम, रास्ता रोके उत्सुक नज़रों से दूल्हा तथा दुल्हन के बाहर आने की बाट जोह रहा था—मर्दों के हाथों में बाँसों के साथ बँधी लिपटी चादरें थीं, जो पलक झपकते ही खुल जाने को व्यग्र थीं और स्त्रियों के दामन फैल जाने को उत्सुक थे। गली के दोनों ओर छतों पर पड़ोसिनों की भीड़ जमा थी, जिन के ओंठ गाना गाने के लिये जैसे फड़क रहे थे।

घर के अन्दर आँगन में तिल धरने को जगह न थी। एक ओर वर पक्ष के लोग खड़े थे, 'इञ्जड़ी चिनने❀' की रस्म हो चुकी थी और पण्डित के मन्त्र अभी-अभी हवा में फैल कर कहीं गुम हो गये और उन का स्थान विदाई की सिसकियों ने ले लिया था। पुरोहित ने चावलों का दाना लड़की के हाथ पर रखा। मंसा ने उसे छिड़कते हुए पण्डित के कहने के अनुसार ओठों में ही कहा—"आप का भाग्य आप के साथ, मेरा भाग्य मेरे साथ," और उस की आँखें भर आयीं, तभी सहेलियों ने गाना शुरू किया—

सट्ठ सहेली दर खड़ी
मैंनू नहीं मिलन दा चाव

❀ दूल्हा और दुल्हन के कपड़ों को बाँधने की रस्म।

वे सुन बाप मेरा×

मंसा सब से गले मिलकर जुदा हो रही थी, यह सुनते ही बाप से चिमट गयी, और लड़कियों ने गाया—

गलियाँ ने होइयाँ बाचल भीड़ियाँ
मैंनू आँगन होइया परदेस
वे सुन बाप मेरा +

और बाप ने आँखों में अनायास ही छलछला आने वाले आँसुओं को बरबस रोकते हुए उसके कन्धे को थपथपाकर कहा— बस, बस !

उस समय अपने पिता तथा पुरोहित का इशारा पाकर दरवाज़े पर खड़ी हुई महरी के कुम्भ में कुछ चाँदी के सिक्के डाल कर दूल्हा बाहर निकले, उनके पीछे-पीछे अपने पिता की गोद से लगी हुई मंसा थी और दोनों के मध्य एक श्वेत साफ़े का छोर लाल सालू से बँधा-बँधा जा रहा था।

उस वक्त एकदम बाजे ज़ोर-ज़ोर से बजने लगे, और शहनाई वाले ने झूम-झूम कर, मुंह फुला-फुलाकर शहनाई में फूँक देना आरम्भ किया, तब समधी ने थैली का मुँह खोल नये मोहरों की तरह चमकते हुए पैसों की एक-दो मुट्ठियाँ दूल्हा-दुल्हन के ऊपर से वार कर फेंकी। बाँसों से लिपटी हुई चादरें खुलीं, दामन खुले और पैसों की लूट आरम्भ हो गयी।

× साठ सहेलियाँ दरवाजे पर खड़ी मेरी बाट जोह रही हैं, पर मेरे मन में किसी से मिलने का चाव नहीं, ऐ मेरे पिता सुन।

+ ऐ पिता, गलियाँ संकरी हो गयी हैं और अपना आँगन अब मेरे लिए परदेश हो गया है।

तब पीछे चली आने वाली तथा गली के दोनों ओर छतों पर जमा स्त्रियों ने आर्द्र कण्ठों से गाया—

गलियाँ ने होइयाँ बाबल भीड़ियाँ
मैंनूँ आँगन होया परदेस
वे सुन बाप मेरा।

मलाबी चुपचाप मन्त्रमुग्ध-सी लाल सालू पहने, तनिक-सा घूँघट निकाले दूसरी स्त्रियों के साथ चली जा रही थी। उस की आँखों से आँसू जारी थे, लेकिन धीमे स्वर से वह भी अन्य स्त्रियों के स्वर में स्वर मिलाकर गा रही थी। उसकी आँखों के सामने एक ऐसा ही दृश्य फिर रहा था, जब वह भी अपने पिता की गोद में चढ़कर घर से विदा हुई थी।

बाजार आ गया। लड़की को ताँगे में बिठा दिया गया। महरी साथ बैठ गयी, तो लड़की की सिसकियाँ और भी ऊँची होती गयीं और वह अपनी माँ के गले से लिपट गयी। मलाबी ने अपनी विदा होती हुई लड़की को ज़ोर से अपने बाजुओं में भींच लिया और उस समय उसे एक और स्निग्ध आलिङ्गन का स्मरण हो आया, जब बहुत वर्ष पहले अपने ही विवाह पर वह अपनी माँ से इसी प्रकार लिपट गयी थी। जब सिसकती हुई लड़की को धीरे-धीरे उसने अलग किया, तो उसके बाजुओं पर से होते हुए उसके हाथ निमिष-मात्र के लिए उसके गोखरुओं पर आ रुके........।

पर तब ताँगा चलने लगा था और समधी ताँगे के ऊपर से पैसों की वर्षा कर रहे थे, भङ्गी लूट रहे थे और बाजे भी ज़ोर-ज़ोर से बज रहे थे।

जब लड़की को विदा करके मलाबी अपने घर में आयी,

तो उसे सब कुछ सूना-सूना-सा प्रतीत हुआ। सालू बदलने के लिए जब वह अन्दर गयी, तो ट्रङ्क पर पड़े हुए उपेक्षित-से गोखरुओं के डिब्बे पर उसकी नज़र गयी और उसने महसूस किया कि वह अपनी इकलौती लड़की को रुख़सत करके ही नहीं आयी, वरन् अपने सब से प्रिय आभूषण को भी विदा दे आयी है।

* * *

दूसरे दिन जब मंसा अपनी ससुराल से वापस आयी और सहेलियों से मिल-मिलाकर जब अपनी मां के पास बैठी, मलावी ने उसे समझाया कि बेटी, तेरा स्वभाव कुछ बेपरवाही का है। रात को सोते समय गोखरू उतार लिया करना। तेरे हाथों में ज़रा खुले हैं, कहीं किसी दिन खिसक ही न जायें!

दो वर्ष बीत गये, तीयों* का त्योहार आ गया। इस बार मलावी ने अपने पति से अनुरोध करके, मंसा को बुलवा भेजा। उसकी सुसराल वाले तो उसे बिलकुल न भेजना चाहते थे; पर वह मैके आने के लिए छटपटा रही थी और उसके कई पत्र, मलावी को आ भी चुके थे।

मलावी स्वयं भी उसे देखना चाहती थी। इस बीच में यद्यपि वह अपनी गोखरुओं की जोड़ी को बहुत हद तक भूल गयी थी; किंतु फिर भी जब किसी की कलाइयाँ आभूषणों से भरी हुई देखती उसे अपनी सूनी कलाइयों का ख़याल आ जाता और अतीत के कई चित्र उस की आँखों के सामने घूम जाते—जब उस के बाज़ू गहनों से भरे हुए थे, उस की कलाइयों में एक साथ बन्द,

* इस त्योहार पर सावन में लड़कियों के मेले लगते हैं। झूले पड़ते हैं और आनंद मनाया जाता है।

गोखरू, लच्छे और चूड़ियाँ पड़ी रहती थी, फिर उस के पति को कारोबार में घाटा पड़ा, और वे सब गहने एक-एक कर के सराफ़ की दूकान पर पहुँच गये और हाथ के गहनों में उस के पास केवल गोखरू ही रह गये। और फिर वह दिन भी उस की आँखों के सामने घूम जाता, जब वे गोखरू भी उस ने हँस-हँस कर अपनी लड़की को पहना दिये थे और उस वक्त वह घर जा कर ताक में रखे हुए गोखरुओं के पुराने डिब्बे को एक नज़र देख लेती, दीर्घ निश्वास भर कर और उसे झाड़-पोंछ कर फिर वहीं रख देती। भाग्य के बिना, कौन किसी चीज़ का उपभोग कर सकता है? गहने तो उसे बहुत मिले, पर उन्हें पहनना किसी और ही के भाग्य में था। उन सब गहनों के नाम पर एक पुराना डिब्बा उस के पास रह गया था, जो उसे अपने अभाव की याद ही अधिक दिलाता था; किन्तु फिर भी उस पुराने डिब्बे को वह फेंकती न थी, झाड़-पोंछ कर वहीं ताक में रख दिया करती थी।

और अब जब वह विह्वल-सी हो कर अपनी लड़की की प्रतीक्षा कर रही थी, तो कौन जानता है, अपने उस चिर-परिचित गहने को देखने की लालसा-सी उस के हृदय के किसी अज्ञात कोने में न दबी पड़ी थी।

और जब एक दिन संसा अपनी ससुराल से आ गयी, तो मलावी ने देखा कि इस दो वर्ष के अर्से ही में उस के गोखरू घिस कर पीतल पसे निकल आये है। और तब आलिङ्गन में ले कर कुशलक्षेम पूछने के बाद, इच्छा न होते हुए भी मलावी ने अपनी लड़की को कोसना आरम्भ कर दिया—'यह गहनों की क्या हालत बनायी है तूने? इस तरह तो पराये का

गहना भी नहीं पहना जाता। दो ही वर्ष में तूने इतने कीमती गोखरू घिसा दिए। पांच रुपये तो मात्र इन की गढ़ाई के मैंने दिये थे। मैल इन में इतना जमा हुआ है! बर्तन मांजते, झाड़ू-बहारी देते समय तू उतारती न थी इन्हें?.....' और गोखरूओं से नजर हटा कर उस ने अपनी लड़की के चेहरे की ओर देखा और उस का हृदय धक से रह गया। वह क्या बक गयी? अपनी लड़की से उस के दुःखदर्द का हाल पूछने के बदले गोखरूओं का रोना ले बैठी। मलावी ने देखा, उस की लड़की कमजोर हो गयी है। उस की आँखों के गिर्द गढ़े पड़ गये हैं और उस का रङ्ग पहले से सियाह हो गया है—सहसा आवेश के वश हो, उस ने फिर अपनी लड़की को अपनी भुजाओं में भींच कर उस के रूखे शुष्क गालों को चूम लिया।

मंसा की आँखें भर आयी थीं। वह न जाने अपनी मां से कौन-कौन-से दुःख का बोझ बटाने आयी थी और मां ने आते ही कोसना आरम्भ कर दिया। अब उस आलिङ्गन में उसके नीरव आंसू मुखरित हो कर सिसकियां बन गये।

तब मलावी ने उसे सान्त्वना देते हुए, अपने इस व्यवहार पर खेद प्रकट किया और तभी मंसा ने बताया कि किस तरह मात्र यही गोखरू उसके पास बच रहे हैं और किस प्रकार उसने उन्हें अपनी कलाइयों से पल-भर के लिए भी अलग नहीं किया। सास ने तो—मंसा ने बताया—शुरू ही में अपने छोटे लड़के की शादी के बहाने से उसके सब गहने ले लिये थे, और फिर लाख मांगने पर भी उसे न दिये थे। ये गोखरू भी एक उत्सव पर उसे पहनने को दिये गये थे, बस फिर उसने उन्हें अपनी कलाइयों से अलग नहीं किया। सास ने बहुतेरा कहा; पर वह किसी तरह

भी अपनी कलाइयों को बिलकुल सूनी कर लेने को तैयार नहीं हुई। इस पर उसकी जो दुर्दशा हुई, उसका हाल भी रो-रोकर मंसा ने अपनी माँ को बताया—सास ने उसे ताने मारे, कोसा, यहाँ तक कि गालियाँ दीं; श्वसुर भी बेहद नाराज़ हुए और उसके पति ने उसे मारा भी; पर उसने फिर गोखरू नहीं दिये।

❀ ❀ ❀

मलावी ने अपनी लड़की को अपनी छाती से लगा लिया, और उसकी आँखों में आँसू निकल आये। इन आँसुओं में कितना दुःख था और कितना सुख, इसे अन्तर्यामी के सिवा कौन जान सकता है?

❀ ❀ ❀

कहते हैं, यदि किसी दूसरे व्यक्ति की नीयत किसी चीज़ में रह जाय, तो वह चीज़ गुण नहीं करती। इसी लिए शायद गोखरुओं ने मंसा को लाभ नहीं किया, बल्कि उसकी जान ही लेने का कारण बने।

मैके हो कर जब मंसा ससुराल पहुँची, तो घर वालों के प्रति उसका व्यवहार और भी रूखा हो गया था और उसने निश्चय कर लिया था कि गोखरू देना तो अलग, वह अपने बाक़ी गहने भी लेकर रहेगी। मलावी ने भी उसे यही कुछ सुझाया था।

"समय-कुसमय पर गहना ही हिन्दू स्त्री के काम आता है, इसलिए नासमझी में अपना गहना गँवा न देना," उसने अपनी मिसाल दे कर कहा था और फिर मासी पूरणदेई की मिसाल दी थी—"अपनी मासी पूरणदेई को ही देख लो, पति ने दिवाले की दरख़ास्त दे दी; पर उसने अपनी एक तीली* तक को भी

* नाक का जेवर।

हाथ नहीं लगाने दिया और अब मुहल्ले की चौधराइन बनी बैठी है।

इसी मशविरे का यह फल था कि जब एक दिन मंसा की देवरानी को मैके जाना पड़ा और सास ने मंसा से प्रार्थना की कि कुछ दिनों के लिये गोखरू उसे दे दे, तो मंसा ने साफ़ इन-कार कर दिया। सास ने अपने बेटे से कहा, बेटे ने अपनी बहू से; पर बहू कुछ ऐसी अपनी हठ पर अड़ी कि टस से मस न हुई, तब उसने बल से गोखरू छीन कर अपने छोटे भाई को दे दिये।

मंसा रोयी-चिल्लायी, गालियाँ खायीं, पिटी और फिर बीमार पड़ गयी।

❀ ❀ ❀

जब मलावी को मालूम हुआ, उसकी लड़की मृत्युशय्या पर पड़ी है और उड़ती-उड़ती यह भी खबर उसके कान में पहुँची कि सास-ससुर ने उसके सब गहने छीन लिये हैं, और उसे मारा-पीटा भी है तो क्रोध से उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, अपने पति को उसने साथ लिया और राहों—अपनी लड़की की सुसराल के लिये चल दी।

इसके बाद जो हुआ, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसी शाम को सब गहनों समेत वह अपनी मृत-प्राय लड़की को सालम लारी पर लाद कर घर को वापस आ रही थी।

मंसा के जीने की कोई आशा हो, यह बात तो नहीं, पर लारी के धक्कों में अपनी लड़की को किसी प्रकार सँभालते हुए वह सर्वशक्तिमान् से यही प्रार्थना कर रही थी कि उसका दम,

कम से कम घर जाने तक रुका रहे।

लारी के फ़र्श पर बिस्तर बिछवा कर, किसी-न-किसी तरह उसने अपनी लड़की को वहाँ लिटा दिया था। मंसा की आँखें बन्द थीं, कुन्दन-सा शरीर राख हो गया था, लकड़ियों के से बाजू, कङ्काल से शरीर के दोनों ओर निर्जीव-से पड़े थे। अन्तिम घड़ियाँ थीं और आत्मा के साथ शरीर का सारा मल भी जब बाहर निकल जाना चाहता था। उस मैले, गन्दे, गीले कपड़े को ही किसी न किसी तरह उसके गिर्द लपेटती हुई, लुढ़क पड़ने से बचाने के हेतु, उसे दोनों हाथों से थामे मलावी उसके सिरहाने बैठी अपनी इस लड़की को निर्निमेष देख रही थी। अपना सब उबाल, सब क्रोध, समस्त क्रन्दन वह समध्याने में खर्च कर आयी थी। इस समय उसकी आँखों में मात्र एक हिंस्र ज्वाला लपलपा रही थी, जैसे वह इस ब्रह्माण्ड को जला डालेगी। रह-रह कर उसकी दृष्टि गोखरुओं पर भी जा पड़ती थी। वह उसे हटा-हटा रखती थी; पर फिर वह वहीं जा टिकती। उसके इतनी साध के गोखरू, वह न पहने, उसकी लड़की न पहने, उसे और कोई पहने—यह वह कैसे सह सकती?

इधर-उधर से गुज़रती हुई मोटर लारियों की मिट्टी उड़ कर लारी के अन्दर आ जाती और वह अपना मुँह दुपट्टे से ढँक लेती, और उसी मैले गन्दे कपड़े का एक सिरा अपनी म्रियमाण लड़की के चेहरे पर भी रख देती।

सन्ध्या का सूर्य मकानों के पीछे कहीं पश्चिम में मुँह छिपा चुका था, जब मलावी, प्रायः मरी हुई लड़की को लेकर अपने आँगन में दाख़िल हुई। मिनटों में पड़ोसिनों ने उसे घेर लिया, पर उसने किसी को आँगन में न घुसने दिया—"इसकी

हालत ठीक नहीं, निर्दयियों ने बस मार कर ही मेरे साथ कर दिया है—" उसने भरी हुई आँखों के साथ कहा और उनसे प्रार्थना की कि वे हवा न रोकें, उसे अपनी लड़की का इलाज करने दें, परमात्मा के घर में..........और सबको सुनाई देने वाली आवाज़ में उसने अपने पति से कहा कि दौड़ कर डाक्टर को बुला लाये, पैसे का मुंह ऐसे समय न देखे और उसके जाने पर, पड़ोसिनों को मिन्नत के साथ, विनय के साथ बाहर भेज कर उसने आँगन का किवाड़ बन्द कर लिया। और लड़की के सिरहाने जा बैठी।

पर लड़की का दम तो शायद अपने इस आंगन तक पहुँचने की ही बाट जोह रहा था। मलावी ने नाड़ी देखी, तो वह बन्द हो चुकी थी।

वह चीख़ मारने लगी थी कि निमिष-मात्र के लिए उस के मन में कोई विचार आया और उस का दिल धक-धक् करने लगा, चीख़ उस के ओठों तक आ कर रुक गयी। इस विचार को उस ने अपने मन से निकालने की कोशिश की, जल्दी-जल्दी व्यस्त हो कर दिये-बत्ती का भी प्रबन्ध किया, किन्तु अन्तर में सङ्घर्ष उस के निरन्तर छिड़ा रहा और दिल और भी ज़ोर-ज़ोर से धक्-धक् करता रहा। उस ने चाहा रोना शुरू कर दे, पर अब की क्रन्दन उस के ओठों तक भी न आया। एक दो क्षण वह आङ्गन में इधर उधर घूमी, अपनी निगाह उसने मृत लड़की के शरीर से दूर रखने की कोशिश की—आख़िर वह उस शव के पास आयी और अकड़ी हुई कलाइयों से उस ने चुपके से गोखरू उतार लिये।

अन्त में किसी ने कहा—लड़की का धन है।

किन्तु फिर अन्तर ही से कोई बोला—मृत लड़की का कैसा धन ? कोई बच्चा भी तो नही !

और वह गोखरू लिये अन्दर कमरे में चली गयी। ताक में वही पुराना उपेक्षित-सा डिब्बा पड़ा था। मलावी ने दुपट्टे से उसे झाड़ कर गोखरुओं को उस में रखा और फिर उसे ट्रङ्क में बन्द कर दिया। तब वह ट्रङ्क से एक श्वेत खेस और चादर निकाल लायी। शव के गन्दे कपड़े उतार कर उस ने एक कोने में रख दिये और उस के नीचे खेस बिछा कर चादर को उस के शरीर पर लपेट दिया। सिरहाने दानों के ढेर पर रखे हुए आटे के दिये को दिया-सलाई दिखायी और फिर आङ्गन का दरवाज़ा खोलकर उस ने एक चीख मारी।

❀ ❀ ❀

इसके बाद ११ दिन किस प्रकार गुजरे। मलावी कितना रोयी-पीटी, उसने कितने बाल नोचे, इसका पता उसकी सूजी आँखें, लाल छाती और रूखे खड़े-खड़े बाल भली भाँति देते थे। ग्यारह दिन तक वह अपनी लड़की की ससुराल वालों को गालियाँ देती रही, कि गहनों के लिए उन्होंने उसकी लड़की की जान ले ली और ११ दिन तक ही वे गन्दे, मैले, बदबूदार कपड़े उसने अपने घर में रख छोड़े, जो उसने अपनी लड़की के शरीर से उतारे थे और गली-मुहल्ले को दिखा-दिखाकर उसने अपनी लड़की के ससुराल वालों की नीचता सिद्ध कर दी और सारी बिरादरी के सामने वे चन्द गहने, जो गोखरुओं के अतिरिक्त उसकी लड़की के शरीर से उतरे थे, उसने 'किरिया' के दिन दान करा दिये।

एक पड़ोसिन ने पूछा—गोखरू नहीं दिये।

उत्तर देते समय मलावी का दिल धड़क उठा था; पर उसने उन कपड़ों की ओर, जो आँगन के एक कोने में नाली पर पड़े थे, इशारा करते हुए कहा था कि जिन्होंने उसकी फूल-सी लड़की को ऐसे गले-सड़े कपड़ों में आवृत्त रखा, उनसे ऐसी आशा कहाँ, ये सब भी न जाने कितने लड़-झगड़ कर वह लायी है । उस निर्दय धरती में पैदा होने वालों ने तो उसे गहनों के लिए तरसा-तरसाकर मार दिया और फिर जैसे अपने आप से उसने कहा था—"अब दिये भी तो क्या ?"

और अब जब 'किरिया-कर्म' के बाद बारहवें दिन वह रात को छत पर लेटी थी, तो उसे नींद न आयी थी । वह सर्वथा अशिक्षित गँवार स्त्री थी । सूक्ष्म भावों का विश्लेषण करना वह न जानती थी; पर उसका वह समस्त कृत्य उसके मन पर बोझ बना बैठा था । अपनी मृत लड़की के शव से उस ने गोखरू उतार लिये । उस ने क्यों ऐसा किया ? उसके कोई दूसरी लड़की नही, उस के क्या, उसके रिश्तेदारों तक में कोई लड़की नहीं कि उसे उन में से किसी के विवाह पर 'खटे' आदि में कोई गहना देना हो । तो क्या वह अन्धों की तरह गोखरूओं के पीछे नहीं भागती फिरी ? क्या वही अपनी लड़की की घातक नहीं ? और वह सिहर उठी । उसने सिर को झटका देकर इस विचार को मस्तिष्क से निकालने की कोशिश की ।

उनकी छत के चारों ओर बड़े-बड़े मकान थे । परे अँधेरे में उसका पति गहरी नींद सोया हुआ था । मलावी ने लम्बी साँस ली, उसके पति के मन पर कोई बोझ नहीं है ना, और उसके अपने मन पर······उस ने करवट बदल ली ।

आकाश पर यद्यपि चाँद चमक रहा था; किन्तु उसकी

एक किरण तक भी उनकी छत पर न दिखाई देती थी और रात जैसे ऊपर के खुले मकानों की दीवारों से टकरा कर सायँ-सायँ कर रही थी।

मलावी के सामने उसका कृत्य फिर भयावह रूप धारण कर के आने लगा। क्या अव्वल से आखिर तक अपनी इस लड़की के प्रति एक असह्य ईर्षा उसके मन में नहीं थी ? क्या आंधी की तरह वह समधियाने की ओर नहीं उड़ी गयी। क्या शुरू से ही उसके मन में यह ख़याल न था कि वह गोखरूओं को वहाँ न रहने देगी। क्या दिल के किसी स्तर के नीचे यह इच्छा न छिपी बैठी थी, कि चाहे लड़की की धरोहर के तौर पर ही सही, पर गोखरू रहें उसके ही पास ! और इस मतलब के लिए लड़की का मरना भी क्या उसने मुश्किल नहीं कर दिया ?

मलावी ने फिर करवट ली। दूर, शायद कहीं किसी लड़की का विवाह होने जा रहा था। दूल्हा शायद 'लगनों' के लिए आ रहे थे। बाजे बज रहे थे और शायद आगे-आगे आतिशबाज़ी छूट रही थी—एक हवाई आकाश की बुलंदियों को तय करती हुई ऐन उसकी छत के ऊपर आ कर फटी। ज़ोर का धमाका हुआ। मलावी डर गयी और फिर निर्निमेष उस तेज़ी से नीचे की ओर आने वाली चिनगारी को ताकती रही। उसकी आँखों के सामने उसकी लड़की के विवाह का सारा दृश्य फिर गया और फिर उसकी अर्थी का दृश्य—क्या इन दोनों को इतना समीप लाने में उसका हाथ न था।

वह अपनी चारपाई से उठी और वहीं छत पर इधर-उधर घूमने लगी। ऊपर से कोई पञ्छी फड़-फड़ करता हुआ उड़ गया। उसके मन में हल-चल मची हुई थी और उन बद-

किस्मत गोखरुओं का भार जैसे प्रतिक्षण उस के मन पर और भी अधिक बोझीला बन रहा था।

❋ ❋ ❋

अपनी उनींदी आँखों को लिये हुए जब भगवती ब्राह्मणी ने डेवड़ी के किवाड़ खोले, तो मंसा की माँ को इस समय अपने सामने पाकर वह हैरान-सी खड़ी रह गयी।

अन्दर जाकर दिये के मद्धम प्रकाश में भगवती ने देखा—मंसा की माँ का चेहरा श्वेत हो रहा है, उसके बाल बिखरे हुए हैं और ओंठ सूखे हुए हैं।

—तुम्हारी बहू घर पर ही है।

इस प्रश्न पर और भी हैरान भगवती मलावी के मुँह की ओर देखने लगी, फिर उसने धीमे शङ्कित स्वर में कहा—"बेचारी अभी सोयी है। धनीराम सेठ की लड़की का लगन था। फेरे शायद अब हो रहे हों; पर मैं तो ले आयी इसे।"

भगवती के लड़के का हाल ही में विवाह हुआ था। अपने पुत्र की इच्छा के विरुद्ध वह अपने इस बड़े यजमान की लड़की के विवाह पर बहू को ले गयी थी। यदि अभी से यजमानों से परिचय पैदा न किया, तो काम कैसे चलेगा? फिर भी 'लगनों' की समाप्ति से पहले ही वह उसे ले आयी थी। अभी-अभी वह अपने कमरे में गयी है—इस लिए उसे बुलाने में भगवती को सङ्कोच हो रहा था। पर मलावी की आकृति में, उसके स्वर में कुछ ऐसी बात थी, कि वह कुछ न कह कर चुपचाप ऊपर चली गयी।

कुछ क्षण बाद भगवती के पीछे-पीछे तनिक-सा घूँघट निकाले हुए सकुचाती और लजाती बहू सीढ़ियाँ उतरी।

मलावी अभी तक वैसे ही खड़ी छत की ओर देख रही थी। अचानक दीवार के साथ लगी हुई पीढ़ी को बिछा कर उसने बहू से कहा—बैठो!

तब भगवती को अपने व्यवहार के अनौचित्य का ध्यान आया। पीढ़ी मंसा की माँ की ओर खिसका कर उसने कहा—नहीं-नहीं, तुम बैठो; मैं मूढ़ा लायी। और यह कह कर वह जल्दी से अन्दर कोठरी से पिसे हुए महीन ईख के घिसे, मैले मूढ़े उठा लायी।

तब बहू का हाथ थाम कर मंसा की माँ ने उसे मूढ़े पर बिठाया और अपने दुपट्टे से गोखरू खोल कर लाल चूड़े के आगे उसकी कलाइयों में पहना दिये।

भगवती की आँखें चमक उठीं और बहू आश्चर्यान्वित-सी, उन चमकते हुए गोखरुओं को देखती रह गयी।

तब भरे हुए गले से मलावी ने कहा—'भाभी, ये मेरी मंसा के गोखरू हैं। मैं अपनी खुशी से इन्हें बहू को देती हूँ। तुम मेरी लड़की के हक में प्रार्थना करना कि ईश्वर उसकी आत्मा को शान्ति दे।' और फिर कुछ रुक कर उसने कहा—"और मेरी एक विनय और है—बहू जब भी हमारे घर आये, इन गोखरुओं को अवश्य पहन कर आये।'

इस के बाद भगवती ने जिन आशीषों का सिलसिला शुरू किया, उन्हें मंसा की माँ ने नहीं सुना। दीर्घ निश्वास को निकल पड़ने से बरबस रोक कर और बिना गोखरुओं की ओर देखे वह दरवाज़ा खोल कर बाहर निकल आयी।

रात तब भी सायँ-सायँ कर रही थी और दूर कहीं आकाश की उँचाइयों में देर का उड़ा हुआ फानूस धीरे-धीरे नीचे की ओर आ रहा था।

खिलौने

जब सुबह का धुँधला प्रकाश आस पास के ऊँचे मकानों को पार करके अहाते में से होता हुआ उस की अँधेरी कोठरी तक पहुँचा, तो बूढ़े खिलौने वाले ने आँखें खोलीं, प्रभात के भिनसारे में उस के इर्द गिर्द बिखरे हुए खिलौनों के ढेर, समुद्र-तल से धीरे धीरे उठती हुई चट्टानों की भाँति दीख रहे थे, अपने डोलते से हाथ धरती पर टिका कर वह उठ बैठा और वहीं बैठे बैठे, दुर्बलता के कारण हिलते-डोलते उस ने अपनी कमर के मैले-कुचैले अँगोछे को ठीक किया, जिस में कई पैबन्द लगे हुए थे और जिस का रंग मैल के कारण उस के शरीर तथा उस कोठरी की कालिमा ही का अंग बन गया था, फिर अपनी प्रायः ज्योतिहीन आँखों से टटोल कर उस ने पास पड़ी लठिया उठाई और उस के सहारे उठ खड़ा हुआ।

कोठरी की चौखट में क्षण भर को रुक कर उसने अपनी मटमैली, प्रायः धूमलि आँखों से अहाते का निरीक्षण

किया यहाँ कोठरी से भी अधिक वीरानी छाई हुई थी, परे कोने में भट्टी खड़ी थी—बेरौनक और उदास—सन्तान की बहुलता के कारण रुग्ण पीतवर्ण माँ की भाँति। इस एक महीने के अन्दर न जाने उस ने कितने भोल उतारे थे; पास ही पके लाल, किन्तु टूटे-फूटे, खिलौनों का ढेर लगा था; बाईं ओर चिकनी मिट्टी का तगार था जिस का तल सूख कर चटक गया था; बाकी अहाते में वे सब खिलौने अस्त-व्यस्त बिखरे पड़े थे जिन्हें उस का बेटा रूप और उस की बहू कमला दिन-रात के कठोर परिश्रम के बावजूद तैयार न कर पाए थे। कर भी कैसे पाते—रूप तो मेले से कई दिन पहले दुकानों की नीलामी पर भाइयों से लड़-लड़ा कर, हाथ-पैर तुड़वा कर घर आ बैठा था—कितना समझाया था उस ने कि बेटा तू सब से छोटा है तुझे छोटा बन कर रहना चाहिये। वे बुरे सही पर तू क्यों बुरा बनता है। किन्तु उस की कौन सुनता है? उसे तो सब मूर्ख, नकारा और अपाहिज समझते थे।

वहीं चौखट पर खड़े-खड़े उसने देखा—सैनिकों की एक लम्बी पंक्ति रंगी हुई खड़ी है, किन्तु इन पर रोगन नहीं हो सका; एक ओर घोंसले बने रखे हैं चिड़ियों का भी ढेर लगा है, किन्तु उन्हें घोंसलों में बैठाया नहीं जा सका; बन्दर और वे तने जिन पर उन्हें कलाबाजी लगानी थी दोनों अव्यवस्थित पड़े हैं और फिर आमों, संगतरों, नाशपातियों, लोकाटों, सेबों, अंगूरों, मक्की के भुट्टों और बाजरे के सिट्टों के ढेर के ढेर पड़े हैं—उस के अन्तर की गहराई से एक दीर्घ निश्वास निकल गया। और फिर लठिया के सहारे वह काँपता-डोलता बाहर की ओर चल पड़ा।

किवाड़ के साथ नुमाइशी खिलौने थे । रूप इन में से कुच्छेक ही समाप्त करके साथ ले जा पाया था। शेष सब अपूर्ण पड़े थे, वृक्ष के तने का एक भाग था जिस की खोह के मुंह पर एक तोता बैठा था और दूसरा दाखिल हो रहा था। हिरणों की एक सुन्दर जोड़ी थी—कान उठाए, गर्दन न्योराए, चौकन्नी और चुस्त ! एक परी थी—पंख पसारे अनजाने आकाशों में उड़ जाने को प्रस्तुत !—अपनी धुँधली पथराई सी आँखों से बूढ़े ने उन सब खिलौनों को देखा। यद्यपि ये खिलौने उसी के बनाए हुए साँचों पर उतारे गए थे, किन्तु वह हस्तलाघव और रंग तथा रोगन की वह सुदक्षता कहाँ ? इन में से हरेक वह दस दस बीस बीस को बेच आया करता था, किन्तु अब ये कौड़ियों के मोल बिकते थे. उस के ये बेटे—उन्हें भी वह अपने खिलौने ही समझा करता था पर अब तो उन सब ने उसे खिलौना समझ रखा था—निष्प्राण और निर्जीव सा खिलौना! माथे को ठोक कर उस ने किवाड़ बन्द किए और ताला लगा दिया

पड़ोसी बनिये की हवेली के सामने बाजा बज रहा था, शायद बनिया अपने पहलोठी के बच्चे को लेकर बाबा सोडल की मन्नत पूरी करने जा रहा था। सोडल बाबा हैं जो दूध पूत के दाता ! जब उसके घर कोई सन्तान न हुई थी तो उसने भी सोडल बाबा की मन्नत मानी थी कि जब उसके घर बच्चा होगा तो वह उसे लेकर बाजे-गाजे के साथ सोडल बाबा की सेवा में उपस्थित होगा। और जब उसके घर जग्गू हुआ तो मेले के ग्यारह दिन पहले उसने स्वयं चार प्यालों में गेहूँ बोए थे, प्रतिदिन सुबह शाम उन्हें शुद्ध पवित्र जल से सींचा था और यह

देख कर उल्लास उसके अङ्गों में न समा पाता था कि पड़ोसियों के प्यालों के पीले ज़र्द अंकुरों की अपेक्षा उसके प्यालों के पौधे गहरे हरे रङ्ग के हैं और दो दो बालिश्त ऊँचे हैं,इस सबका अर्थ यह था कि सोडल बाबा उस पर खूब प्रसन्न हैं। बाबा की पूजा के निमित्त मठरियाँ बनाने के लिए वह अत्युत्तम गेहूँ लाया था—मोटे मोटे शर्बती रङ्ग के—सूप में फटक कर और पानी में भिगो कर उसने उन्हें बिलकुल साफ़ किया था, और फिर ग्यारह दिन उन्हें धूप में सुखाया था। इस बीच में वह स्वयं उनकी रखवाली करता रहा था, ताकि देवता के चरणों में चढ़ने से पहले कोई चिड़िया उन्हें जूठा न कर जाए। मेले की पहली रात को उसने स्वयं अपनी पत्नी के साथ बैठ कर मठरियाँ, शकरपारे और पापड़ियाँ बनाई थीं और जब मेले के दिन प्रातः दोनों हाथों में पूजा की थाली और गेहूँ के प्याले थामे बाजे के पीछे पीछे अपनी पत्नी और बच्चे के साथ वह सोडल की पूजा के हेतु चला था तो दूध और पूत देने वाले सोडल के प्रति उसका मन श्रद्धा-भक्ति से ओत-प्रोत हो उठा था।

उस दिन की याद आते ही एक काले-कलूटे रोगी से युवक का चित्र उसकी आँखों के सामने घूम गया—पतले-पतले हाथ-पाओं और तिली के कारण बढ़ा हुआ पेट। यह जग्गू था—उस का पहलोठी का लड़का—जिस के जन्म पर बाजे-गाजे के साथ वह सोडल के मेले पर गया था, जिस के जन्म के साथ ही उसके मन में सुन्दर सपनों ने जन्म लिया था किन्तु समय के साथ उस के सपने भी जग्गू ही की भान्ति पीले बीमार और बेढंगे हो गए थे।

उस ने बाबा सोडल की खब मन्नतें मानी थीं और प्रति-

वर्ष बड़ी श्रद्धा से उनकी पूजा करता रहा था, और सोडल बाबा ने भी दूध और पूत से खूब ही उस की गोद भरी थी। जम्बू के बाद उस के तीन लड़के हुए थे—सुन्दरी, हरि, और रूप! बाबा सोडल हैं भी तो दूध पूत के दाता—किन्तु उन का काम दूध पूत देना भर है शेष जीवन से उन्हें कोई सरोकार नहीं—बाद को दूध चाहे फट जाए और पूत चाहे कपूत हो जाए।

दूध फट गया था और पूत कपूत हो गये थे। और वह अपने भाग्य को कोसता, भय और चिन्ता से चूर, भीड़ से बचता-बचता, दुर्बलता के कारण काँपता-हाँपता लठिया के सहारे चला जा रहा था। उस के सामने एक तूफ़ान उठ रहा था और उसे अनुभव होता था जैसे यह तूफ़ान उस के नीड़ के अन्तिम तृण तक बिखेर कर रख देगा, और वह चाहता था कि वह उड़ कर वहाँ पहुँच जाए और पंख फैला कर, सीना ताने तूफ़ान के सामने खड़ा हो जाए, अपने घोंसले को बचा ले, अपने बच्चों को बचा ले, किन्तु उस की दशा उस पक्षी की सी थी जिस के परों में इतनी भी शक्ति न रही हो कि वे पूरी तरह फैल सकें।

चारों भाइयों की दुकानें ज़मीन के एक ही टुकड़े पर साथ लगी हुई थीं। पहले इस टुकड़े पर एक केवल एक दुकान लगती थी, फिर दो लगने लगीं, फिर तीन हो गईं और अब थीं चार! प्रकट वहाँ अब भी एक ही दुकान लगी प्रतीत होती थी, किन्तु वास्तव में रूप और उस के भाइयों की दुकानों में एक अदृश्य दीवार आ खड़ी हुई थी।

प्रातः इधर श्रद्धालु बाबा सोडल के दर्शनार्थ आने लगे,

उधर चारों भाइयों में होड़ लग गई, सोडल के भक्त बड़े दरवाजे से आते और तालाब के पास बैठे हुए पुजारी के सामने पूजा के निमित्त लाई हुई मठरियाँ ढेरी करके, प्यालों को तालाब की सीढ़ियों पर फेंक, स्नान करते, फिर अपने पूर्वजों को पानी चढ़ाते और एक एक पुरखे का नाम लेकर ग्यारह ग्यारह बार तालाब की मिट्टी निकालते, तत्पश्चात सपरिवार सोडल बाबा के मन्दिर की परिक्रमा करते और फिर खोंचे वालों की असंख्य दुकानों से खाते और बच्चों को खिलाते हुए खिलौनों की इन चारों दुकानों के सामने से गुज़रते, क्योंकि लौटने का दरवाज़ा इन दुकानों के पार्श्व ही में था।

रूप की दुकान सब से आगे थी, उस के बाद हरि की, फिर मुन्दरी की और आखिर में जग्गू की। रूप की चोटें अभी तक ठीक न हुई थीं। वह दुर्बल भी था इस लिए चुपचाप गद्दी पर बैठा था। उस के मोहल्ले के दो एक लड़के (मात्र विनोद के लिए) और कुछेक युवक (महज़ आँखें सेंकने के हेतु) उस के काम में हाथ बटा रहे थे। महीनों घर की कारा में बँधी तरुणियाँ अवसर पाकर मेले में स्वच्छन्द मृगियों की भाँति विचर रही थीं। और इस उन्मुक्त सौन्दर्य का प्रदर्शन करने के लिए खिलौनों की इन दुकानों से अच्छा कोई स्थान न था। मेले से लौटते हुए लोग इन्हीं दुकानों के आगे से होकर गुज़रते, इन में से अधिकतर खिलौने भी खरीदते तब खिलौने लेते समय किसी युवती की आँखों में आँखें डाल देना अथवा रजत हाथों या मृदुल अँगुलियों के स्पर्श का आनन्द ले लेना कोई कठिन बात न थी। और वे सब युवक बड़े उत्साह से खिलौने बेच रहे थे।

ज्यों ज्यों रूप के खिलौने ज्यादह बिकते, हरि और सुन्दरी के मन में धूल सी उठती—ईर्षा और द्वेष की धूल ! रहा चग्गू तो वह ईर्षा और द्वेष से परे था। अपने फूले हुए पेट, कंकाल मात्र शरीर, लकड़ियों से सूखे हाथ-पाँव को लिए वह भीगी मिट्टी की तरह पड़ा था। सहसा हरि एक स्टूल पर खड़ा हो गया और आवाजें देकर खिलौने बेचने लगा। उसकी देखा देखी सुन्दरी भी उठा, किन्तु रूप की दुकान पर एक के बदले दो लड़के खड़े हो गए।

रूप के ओठों पर विजय की एक हलकी-सी मुस्कान फैल गई। उसके तप्त हृदय को निमिष भर के लिए सान्त्वना मिली। इस दुकान के लिए उसने अन्य भाइयों से छः रुपये अधिक दिए थे। हाथ पाँव तुड़वाए थे, सात दिन तक निर्जीव-सा पड़ा रहा था, किन्तु अपनी इस सफलता को देख कर उस को जैसे अपने समस्त कष्टों का फल मिल गया। काश, वह सारे खिलौने समाप्त कर पाता !

वास्तव में जग्गू और सुन्दरी की अपेक्षा उसे हार पर क्रोध था। यद्यपि जग्गू सबसे पहले अलग हुआ था, किन्तु उसकी पृथकता से भाइयों में किसी प्रकार की होड़ का सूत्र-पात न हुआ था और जब एक दिन सुन्दरी भी अपनी पत्नी को लेकर पृथक् हो गया तो भी परिवार परस्पर मिलते-जुलते थे और दुकानें एक ही टुकड़े पर लगती थी। किन्तु हरि ने अलग होकर उनके मध्य एक अगम्य खाड़ी बना दी थी। वह इतना चतुर और स्वार्थी था कि रूप उस से तंग आ गया था। दोनों बड़े भाइयों के अलग हो जाने के बाद रूप और हरि मिल कर काम करते थे। दोनों ने अपने विवाह पर कुछ ऋण ले रखा

था। हरि ने रूप से कहा था—हम दोनों मिल कर यह ऋण चुका देंगे। पहले तुम मेरा ऋण चुकाने में मुझे सहायता दो, फिर मैं तुम्हारे साथ मिल कर तुम्हारा ऋण चुका दूँगा। और जब दिन-रात के परिश्रम से, दूसरे भाइयों की अपेक्षा दुगने तिगुने खिलौने बना कर, रूप और कमला ने हरि का ऋण चुका दिया था और जब रूप का ऋण चुकाने की बारी आई थी, तो वह अलग हो गया था। इतना ही नहीं, उसने रूप के विरुद्ध दूसरे भाइयों को भड़काया भी था और फिर तीनों ने मिल कर उसके विरुद्ध एक मोर्चा लगा लिया।

रूप के मन में बगूला-सा उठा और उसने क्रोध भरी दृष्टि से हरि की ओर देखा उसने खिलौनों का मोल घटा दिया था। कड़क कर रूप ने अपने आदमियों से कहा—"इकन्नी वाली चीज़ों के दो दो पैसे कर दो!" और लड़कों ने बड़े ज़ोर से आवाज़ लगाई "इकन्नी वाले खिलौने दो दो पैसे में" "इकन्नी वाले खिलौने दो दो पैसे में!"

काश, वह सारे के सारे खिलौने समाप्त कर पाता! दीवाली, दसहरा, ठंडड़ी, बाजड़े सब मेलों में उसके भाइयों ने उसके मुकाबले में दुकान लगाई थी, किन्तु कुछ अपने परिश्रम और कुछ पड़ोसियों की सहानुभूति तथा सहायता के कारण वह अपने भाइयों से बाज़ी ले गया था। एक मेले के समाप्त होते ही वह और कमला दूसरे की तैयारी आरम्भ कर देते। वसन्त पंचमी के मेले में उसके भाइयों ने खिलौनों का मोल कम कर दिया था। इस लिए वह सोडल के लिये इतने खिलौने बना लेना चाहता था कि यदि इकन्नी वाले खिलौने पैसे पैसे को भी बेचने पड़ें तो वह उन सबसे बाज़ी ले जाए।

और दिन रात के परिश्रम तथा उद्योग से उन्होंने अगणित खिलौने तैयार भी कर लिये थे। बसन्त पंचमी के बाद ही वह और कमला एक प्रबल, अन्धे हठ के अधीन सोडल के मेले की तैयारियाँ करने लगे थे। रात के पिछले पहर उठ कर, लैम्प के धीमे प्रकाश में, वे मिट्टी और साँचे ले बैठते और सुध-बुध खोकर सारा सारा दिन खिलौने बनाने में निमग्न रहते। जब भूख लगती तो कुछ रूखी-सूखी खाकर फिर काम में जुट जाते। बैठे बैठे थक जाते, तो रूप उठ कर नए खिलौनों के लिये मिट्टी का तगार बनाने लगता और कमला धूप में सूखे हुए खिलौनों को मिट्टी के पास ला रखतीं। वह मिट्टी बना लेता तो वह कमाने लगती। इस प्रकार थके हुए अंग कुछ खुल जाते तो फिर दोनों साँचे ले बैठते, शाम का भोजन भुने हुए चनों से हो जाता। साथ साथ काम होता, साथ साथ पेट को ईंधन दिया जाता। दिन चढ़ता-ढलता और अस्त हो जाता किन्तु उनके उत्साह में कमी न आती। उसी निष्ठा से वे काम में लगे रहते। रात का एक एक बज जाता किन्तु उनकी स्फूर्ति थकने का नाम न लेती, उनके हाथ उसी वेग से चलते। खिलौनों से फ़ालतू मिट्टी उसी गति से उतारी जाती, सूखे हुए खिलौनों पर सफ़ाई के लिये पानी का हाथ उसी तेजी से फेरा जाता—और उन्होंने इतने खिलौने बना लिये थे कि यदि वह सब पूरे हो जाते। उन पर रंग रोगन हो जाता, तो रूप अपने भाइयों को ऐसा पढ़ाता......ऐसा पढ़ाता......चाहे फिर वे इकन्नी का खिलौना अधेले अधेले ही में बेचते किन्तु उसके ये क्रूर भाई—टुकड़ों की नीलामी पर उन्होंने उसे बुरी तरह पीटा था और वे सब खिलौने अधूरे ही पड़े रह गए थे।

बात यह थी कि जहाँ पहले सब भाई मिल कर एक टुकड़ा आठ रुपये को ले लेते थे वहाँ अब उसी एक टुकड़े को चार भागों में विभक्त किया गया था, रूप के भाई चाहते थे कि अन्तिम टुकड़ा रूप को दिया जाए क्योंकि वह सब से छोटा है, किन्तु सब से अन्त में स्थान पाने का अर्थ यह था कि उस का एक खिलौना भी न बिके। उस के ये 'दयावान' भाई कब किसी ग्राहक को उस तक पहुँचने देते इस लिये वह अड़ गया था कि लेगा तो पहला टुकड़ा ही लेगा। इस पर उन चारों टुकड़ों में से पहला नीलाम हुआ था और पहले जहाँ सारे का सारा टुकड़ा आठ रुपये को बिकता था वहाँ उस का चौथा भाग आठ को बिका, रूप ने उसे ले लिया, यद्यपि शेष टुकड़ों की बोली न हुई थी और उस के भाइयों को तीनों टुकड़े छः रुपये में मिल गए थे किन्तु पहले टुकड़े के चले जाने का खेद उनके मन में बना रहा, रास्ते में उन्हों ने रूप को गालियाँ दीं और जब उस के मुँह से भी कुछ ऐसे वैसे शब्द निकल गए तो उन्हों ने उसे खूब पीटा।

जब वह घर आया तो लोहूलुहान था—रूप के दिल का बगूला आँधी बन चला—उस समय उस की दुकान के लड़के आवाज़ें लगा रहे थे, "इकन्नी का खिलौना दो पैसे में"! इकन्नी का खिलौना दो पैसे में"! तब हरि चिल्लाया—"इकन्नी का खिलौना डेढ़ पैसे में"! रूप उठ कर चीखा, "इकन्नी का खिलौना एक पैसे में"!

"तुम्हें अपने बाप की सौगन्ध तुम बैठे रहो"—कमला ने विनीत स्वर में कहा और हाथ खींच कर उसे बैठा दिया। रूप की दृष्टि कमला की ओर गई—ज्यों ही एक खिलौना बिक जाता,

विद्युत गति से वह दूसरा उन्हें देती। यदि कमला न होती तो वह कभी भी मेले में आने की सामर्थ न पाता—रात-रात भर वह उसे गरम ईंट का सेंक देती रही थी, उस की देख-भाल करने के साथ न केवल वह उसके लिए औषधि आदि लाती और खाना पकाती, बल्कि वह खिलौने बनाती, पकाती और रँगती रही थी। उसमें कुछ ऐसा गुण था कि मोहल्ले भर के छोटे-छोटे बच्चे उनके आँगन में इकट्ठे हो जाते और हँसी खुशी उनका हाथ बटाते। कोई बने हुए खिलौनों को उठा उठा कर धूप में रखता, कोई सूखे हुए खिलौनों को पकाने के लिए इकट्ठा करता, कोई पके हुए खिलौनों को खड़िया मिट्टी में रँगता और बीसियों छोटे छोटे काम पलक झपकते हो जाते। बीमारी के उन छः सात दिनों में रूप को अपना कष्ट तनिक भी महसूस न हुआ था। इस समय जब दूसरे भाइयों की पत्नियाँ रङ्ग-बिरङ्गी धोतियाँ पहने, मिस्सी से ओंठ रँगे, सर में सरसों का तेल, आँखों में काजल और माथे पर बिन्दी लगाए, मेला देख रही थीं, कमला वही मटमैली धोती पहने उसका हाथ बटा रही थी—और उसके मैके में किसी ने कभी मिट्टी को हाथ तक न लगाया था—तभी रूप ने देखा कि हरि उसकी दुकान के सामने खड़े ग्राहकों को आवाजें दे रहा है। क्रोध से वह उठा—उसके दिल की आँधी तूफ़ान बन चली। उस समय हरि ने उसके एक ग्राहक को कन्धे से खींचा। रूप ने ललकार दी। हरि ने उत्तर में गाली। रूप का क्रोध उसकी आँखों में लाली बन गया। उस ने लाठी उठा ली और फलाँग कर दुकान के नीचे आ गया।

बूढ़ा भीड़ से बचता बचाता काँपता डोलता चला जा रहा था—ये इतने असँख्य लोग—ये सब खिलौने ही तो हैं

किन्तु ये सब अपने बनाने वाले को भूले हुए हैं—ठीक उसी प्रकार जैसे उसके खिलौने उसे भूल गए थे। किन्तु शायद वह महान निर्माता भी उसकी भाँति बूढ़ा हो चला है!

उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया। यह इतना रास्ता जो कभी वह खिलौनों का सब से बड़ा टोकरा उठाए एक डेढ़ घँटे में तय कर लेता था अब कठिनता से तीन चार घँटे में पार कर पाया था। सहस्रों लोग सोडल की पूजा करके अपने कामों पर जा लगे थे। वह शायद लौट जाता, शायद थक कर रास्ते में बैठ जाता,......किन्तु एक अज्ञात प्रेरणा उसे बरबस आगे धकेल रही थी। उस की आँखों के सामने तूफ़ान प्रतिक्षण उग्र रूप धारण कर रहा था। उसे लोगों की भीड़, खोंचेवाले, सबीलें, दुकानें, कुछ भी दिखाई न दे रहा था और वह अनुभव कर रहा था जैसे यह तूफ़ान उसके नीड़ के तिनके तिनके बखेर देगा। वह इस तूफ़ान के सामने छाती फुला कर डट जाना चाहता था।

बड़ी कठिनाई से स्वयं-सेवकों की मिन्नत करके वह, दुकानों के पीछे से दाखिल हुआ। किन्तु जब वह दुकानों के पास पहुँचा तो तूफ़ान उसके घोंसले को अपनी लपेट में ले चुका था। लाठियों के प्रहारों से खिलौनों की दुकानें बिखर चुकी थीं और भाई-भाई एक दूसरे पर टूट चुके थे। बूढ़े का कम्पन सहसा बन्द हो गया, उसकी कमर न जाने कैसे सीधी हो गई, उसकी थकान न जाने कहाँ उड़ गई—क्षण भर के लिए उसने अनुभव किया जैसे वह वही पुराना खिलौने वाला है, और वे उसके बनाए हुए खिलौने हैं जो आपस में गड़बड़ हो रहे हैं और उसे उनको फिर यथास्थान रख देना है, और वह लाठिया

उठाए हुए उस तूफ़ान में घुस पड़ा।

मेला समाप्त हो गया—रूप, हरि और सुन्दरी मेले के अस्पताल में पट्टियाँ बाँधे पड़े थे—चारपाइयाँ, लकड़ी के तख्ते और टीन के खाली कनस्तर, जिन से यह दुकानें खड़ी की गई थी और वे खिलौने, जो उन दुकानों में सजाए गए थे, सब बिखरे पड़े थे और उन सब के मध्य एक औंधी चारपाई के नीचे बूढ़ा खिलौने वाला पड़ा था—संसार के उस आदि कलाकार की भाँति बेबस, जिसने खिलौने बनाकर उन पर अपना अधिकार खो दिया है, और स्वयं एक खिलौना बन गया है—निष्पन्द और निष्प्राण! लठिया अब भी उस के हाथ में उठी हुई थी मानो वह अब भी उस तूफ़ान का सामना करना चाहता था, किन्तु वह अज्ञात प्रेरणा शायद यहाँ आकर खत्म हो गई और उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी!